ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—३१

शेर-ओ-सुख़न

पाँचवाँ भाग

प्राचीन और वर्त्तमान ग़ज़लगोईपर तुलनात्मक
अध्ययन, हरजाई, बेवफा, जालिम मअ़्शूकके
एवज नेक और पाक हबीबका तसव्वुर,
रोने-बिसूरनेकी प्रथा बन्द, रंजो-गमका
मुसकान भरा स्वागत
निराशावादका अन्त

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

नजर आये-न-आये कोई आँसू पूँछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ वेकसी ! दीवारो-दर देंगे ॥

—शाद अज़ीमाबादी

कोई सुने न सुने इन्क़लाबकी आवाज़।
पुकारनेकी हदोंतक तो हम पुकार आये ॥

—अनवर साविरी

न खींच ऐ चारागर ! मजरूह दिलसे खूंचिका नावक।
सजाया है बड़ी काविशसे हमने इस गुलिस्ताँको ॥

—'दिल' शाहजहाँपुरी

साहू-जैन-कुल-दिवाकर

आयुष्मान् प्राणप्रिय अशोककुमार

और

सौभाग्यवती बहूरानी इन्दु-श्रीको

अनेक शुभ भावनाओ एवं

शुभाशीर्वादो सहित

सस्नेह भेंट

●

गोयलीय

द्वितीय संस्करण

प्रथम सस्करणमें सिंहावलोकनका पूर्वार्द्ध द्वितीय भागमे ल
गया था, क्योकि वह पांचों भागोके छपनेसे पूर्व लिखा गया था और उ
उत्तरार्द्ध पांचवें भागके मुद्रित समय लिखा गया था, अतः वह पांचवे भ
दिया गया था। अब द्वितीय सस्करणमें अध्ययनकी सुविधाकी दृ
दोनों अंश एक साथ पांचवे भागमे दिये गये हैं, और पाचवे भागके प्र
सस्करणमे दिये गये शाइरोका परिचय एव कलाम द्वितीय सस्करणमें
दिया गया है। उनमे-से कुछ शाइर चौथे भागमें दिये गये हैं, और
वे शाइर जो अपनी आयु या शाइराना मर्तबेके ख्यालसे नये युगके श
हैं, उनका यथोचित परिचय एव कलाम शाइरोंके नये दौरमे क्रमानु
यथास्थान दिया जायेगा ।

सशोधन आदिके अतिरिक्त इस भागमे ३०० नये मअ़्नी फुटनो
यथास्थान और बढाये गये हैं। १४ पृष्ठका नया वक्तव्य और लिखा

डालमियानगर
६ दिसम्बर १९५७

अयोध्याप्रसाद गोयल

विषय-सूची

प्रारम्भसे ई० सन् १९५७ तककी इश्किया शाइरीपर

सिंहावलोकन

पूर्वार्द्ध

ज़रूरी

१—प्रस्तुत पाँचवें भागमे उर्दूके प्रारम्भसे १६५७ ई० तककी गज़लका इतिहास सम्पूर्ण हो गया है।

२—अब इससे आगे—नज़्म, रुबाई, मर्सिया, गीत आदिका क्रम-बद्ध इतिहास और इनके सर्वश्रेष्ठ शाइरोका परिचय एव कलाम तैयार हो रहा है, जो कि 'शाइरीके नये दौर' और 'शाइरीके नये मोड़' शीर्षक पुस्तकोमें सम्भवतः आठ भागोमें समाप्त होगा। इन ग्रन्थोकी रूप-रेखाका किंचित् आभास पाँचवे भागके अन्तमें दी हुई दो पृष्ठोकी विज्ञप्तिसे हो सकेगा।

३—उन ख्याति-प्राप्त गज़ल-गो शाइरोका परिचय भी उक्त नवीन पुस्तकोंमे मिलेगा, जिनकी आयु ५० से अधिक नही है। यानी जो इसी बीसवी शताब्दीमें उत्पन्न हुए और १९२० के बाद १६५७ तक किसी भी अवधिमे प्रसिद्ध हुए। अथवा अपने रगे-सुखनके कारण वयो-वृद्ध होते हुए भी नये युगके शाइरोमें जिनका शुमार है। क्योंकि 'शेरो-सुख़न' में प्राचीन शाइरोंके अतिरिक्त स्वर्गस्थ अथवा वयोवृद्ध वर्त्तमान-युगीन उन्ही शाइरोका उल्लेख हुआ है, जिनकी आयु ५० से अधिक है, यानी जो १९वी शताब्दीमें पैदा हुए और १९२० ई० के लगभग उस्तादीके मर्तबेको पहुँच गये। इनसे कम आयुके नज़्म-गो एव गज़ल-गो शाइरोका परिचय 'शाइरीके नये दौर' और 'शाइरीके नये मोड़' ग्रन्थोमें होगा। इतिहासकी सुरक्षाकी दृष्टिसे पुरानोंके साथ नयोंकी खलत-मलत मुझे उचित प्रतीत नही हुई। युगानुसार और क्रमवार परिचय देना ही उपयुक्त जँचा।

४—'शेरो-सुख़न' गज़लका इतिहास है। लेकिन उसमें चन्द ऐसे

शाइरोंका भी परिचय एवं कलाम दिया गया है, जो गज़ल और नज्म दोनो कहते है । क्योकि वे अपनी आयु अथवा ख्यातिके लिहाज़से इसी युगके शाइर है । यथास्थान उनकी १०-५ नज्मोंके नमूने भी दे दिये गये है ।

५—'शेरो-शाइरी' और 'शेरो-सुखन' मे केवल १४ हिन्दू शाइरोका उल्लेख हुआ है । वर्त्तमान युगीन अनेक ख्यातिप्राप्त हिन्दू शाइरोका परिचय 'शाइरीके नये दौर' और 'शाइरीके नये मोड़' मे संकलित किया जा रहा है और पुराने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शाइरोंके कलामकी खोज भी की जा रही है । उन सबका परिचय किसी भिन्न ग्रन्थमें देनेका प्रयास किया जायगा ।

डालमियानगर
१ जुलाई १९५४ ई०

गो० प्र० गोयलीय

द्वितीय संस्करणके लिए

पसन्द अपनी-अपनी, समझ अपनी-अपनी

शेरो-सुखनके पाँचो भागोमे अनेक स्थलोपर प्रसगवश तीखी आलोचनाएँ भी हुई है। जिसे शेअर समझनेका शऊर नही, बज्मे-अदबमें बैठनेका सलीका नही, फिर भी उनके कलामपर लबकुशाई करे? बौना होकर भी हिमालयपर चोट करनेकी जुरअत! लाहौल वलाकूवत... ...

बक गया हूँ जुनूँमें क्या-क्या कुछ
कुछ न समझे खुदा करे कोई
—ग़ालिब

अणुकी क्या बिसात जो सूर्य्यके प्रकाशको धूमिल बना सके? आन्धी-तूफानके क्षणोमे सूर्य्य-प्रकाश किसीको धूमिल प्रतीत होने लगे तो इससे सूर्य्यकी गरिमा कम नही हो जाती। गजलका विश्लेषण करते हुए उसपर तत्कालीन शासको, रीति-रिवाजो, वातावरण आदिका क्या प्रभाव पडा, उसकी प्रगतिमे कौन सहायक और कौन बाधक हुए? उसके उत्थान एव पतनके क्या कारण थे। लखनवी-देहलवी स्कूलोकी स्पर्द्धाने उसे क्या लाभ और क्या नुकसान पहुँचाया? प्रसगवश स्पष्टीकरण करते हुए यथास्थान मधुर और कटु उल्लेख हुए है।

उनके कलामरूपी समुद्रको मन्थन करनेपर जो कुछ पाया है उसे शेरो-सुख़नके पृष्ठोमे सँजो दिया है। बकौल गालिब—

रूए-सुखन किसीकी तरफ हो तो रूस्याह।
सौदा नहीं, जुनूँ नहीं, वहशत नहीं मुझे॥

कौन शेअर अच्छा है और कौन बुरा? यह परख आसान नहीं।

2095

शाइराना कलामसे साधारण-सी वातमें भी चार चाँद लग जाते हैं और गैर शाइराना अन्दाजसे कही गई वडी-से-वडी वात भी दो कौड़ीकी हो जाती है। सिद्धहस्त कलाकार नग्न मूर्तिमें भी वह प्रभाव उत्पन्न कर देता है कि दर्शक देखते ही आत्म-विभोर हो जाये। वडे-से-वड़ा मूर्ति-भजक भी मस्तक झुकानेको वाध्य हो जायें और अनाडी पूज्यनीय व्यक्तियोंके भी ऐसे चित्र वना देता है, जिन्हें कौड़ीके तीन-तीन भी नही पूछा जाता। शेअ्रकी अच्छाई-बुराई परखते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि शाइरने अमुक शेअ्र किस वातावरणमें, किस परिस्थितिमे कहा। क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, वातावरण आदि शाइरीके निर्माणमे वहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

सन् १९२३ की मेरे सामनेकी घटना है। ६-७ मित्र पिकनिकके लिए दिल्लीसे कुतुवमीनार गये हुए थे। खाने-पीनेके वाद लतीफो और शेअ्रो-शाइरीका भी दौर चला। तभी एक हज़रतको लनतरानीकी जो सूझी तो यह मिसरअ—

ओढ़ा गया न तुमसे दुपट्टा सम्भालके

देकर बोले—"जो इसपर पाँच मिनटमें गिरह न लगाये, वह रण्डीका।"

गाली सुनी तो एक सज्जन जो वहुत ही भद्र, सभ्य और मितभाषी थे, मारे गैरतके उनके मुँहसे अनायास निकल गया—

जूता जो हमने तेरे लगाया निकालके।
ओढ़ा गया न तुझसे दुपट्टा सम्भालके॥

शेअ्रका सुनना था कि यार लोगोंने कहकहोंसे आस्मान सरपर उठा लिया। दादका वह रेला था कि थम नहीं पा रहा था। किस्म-किस्म-की हाशियाआराइयाँ होने लगीं। किसीने कहा—"क्यों यार, देसी लगाया या विलायती ?" तो किसीने तुरप जड़ी—"क्यों साहव वस एक ही ?"

और वे मिसरेवाज हैं कि कटे जा रहे हैं और झेंप मिटानेके लिए दाद देनेमें सबसे पेश-पेश हैं।

अब देखिए न यह शेअर है न शेअरकी दुम। मगर मौकेपर इसीने सबकी आबरू रख ली। अब कोई साहब उक्त तुकबन्दीको उन सज्जनके नामसे चस्पाँ कर दे तो उस गरीबके पास सर फोड लेनेके सिवा और चारा भी क्या है?

प्राय सभी लेखकों और शाइरोको प्रसगवश रुचिके विपरीत भी कभी-न-कभी कहना पड जाता है।

दोस्तोका मजमअ लगा हुआ है। एक-से-एक बढकर वेनुकत उड रहा है। हास्य-परिहास चल रहा है। ऐसे वातावरणमे मौलवियाना रग-ढग कोई कबतक इख्तियार कर सकता है। विवाह-शादी, मेले-तमाशे, तफरीही मजलिसो-पिकनिको आदिमे हर शख्स अपनी जौलानीये तबिअत-का परिचय देना चाहता है। बडे-से-बडे गम्भीर व्यक्तिके मुखसे भी ऐसे विनोदी वाक्य निकल जाते है कि जिनकी उनसे कभी आशा नही की जा सकती। आखिर इन्सान-इन्सान है। न वह चौबीसो घण्टे कुरआनकी तिलावत ही कर सकता है और न गीता-रामायणका अखण्ड पाठ। हर व्यक्तिको जीवनमें आमोद-प्रमोदकी आवश्यकता है।

'रियाज़' खैराबादी दोस्तोंके मजमेमे बैठे हुए है। खुश गप्पियाँ चल रही है। हाजिर जवाबीके नये-से-नये जुमले तराशे जा रहे है। तभी एक दोस्त यह मिसरअ देकर रियाज़को गिरह लगानेके लिए मजबूर कर देते है—

यह चोटी किस लिए पीछे पडी है?

अब आपही बताये रियाज़ साहब क्या करे? क्या वहाँसे उठकर मस्जिदमे जाकर अज़ान देने लगें या उक्त मिसरेपर कुरआन शरीफकी कोई आयत चस्पाँ कर दे? या मौलवियाना नसीहत झाडने लगे? आखिर गिरह लगानेपर वाध्य होते है—

रहे सीना तना लंगरसे इसके।
यह चोटी इसलिए पीछे पड़ी है॥

मिर्ज़ा दाग शतरंज खेल रहे हैं। प्यास लगनेपर पानी मँगवाया गया। एक १२-१३ वर्षकी छोकरी पानीका गिलास लाई तो हवाके ज़ोरसे उसका दुपट्टा कान्धेसे सरक गया। उसने मारे हयाके दोनों हाथ सीनेपर रख लिये। दागने यह मंजर देखा तो अनायास उनके मुँहसे निकला—

बादे-सबाने भी न किया उनको बेहिजाब।
सीनेपै हाथ आ गये, जब शाना खुल गया॥

दाग ही क्या, कोई और संजीदा शाइर भी यह दृश्य देखता तो इसी तरहके भाव व्यक्त करता। गज़लका शेअर प्रकटमें कुछ और अन्तरगमें कुछ और भाव रखता है। गज़लमें हर बात हुस्नो-इश्क, साक़ी-ओ-मैख़ाना और गुलो-बुलबुलके माध्यमसे कही जाती है। यह तो अपनी-अपनी समझ और रुचि है कि गज़लके शेअरको कहाँ और किस सलीकेसे उपयोगमें लाया जाय। दर्पणमें प्रतिबिम्बित होनेकी क्षमता है। हूर और लगूर सभीके चेहरे उसमें देखे जा सकते हैं।

१९३० ई० के असहयोग-आन्दोलनके युगकी बात है, दिल्लीके कम्पनी बाग़में काँग्रेसके जल्सेमें राजपूताना-केसरी श्री अर्जुनलाल सेठीका धुआँ-धार भाषण हो रहा था। जनतामें एक हूका आलम था। सब दम-ब-खुद बने सुन रहे थे। "अंग्रेज़ोंने कैसी-कैसी धूर्त्तताओंसे भारतको आधीन किया, यहाँके उद्योग-धन्धोंको किन बेरहमियोंसे चौपट किय? भारतीयोंको गुलाम बनाये रखनेके लिए क्या-क्या ऐय्यारियाँ करते रहते हैं। उनसे अब दामन बचाकर निकलनेका वक्त आ गया है" इसतरहके भाव व्यक्त करते हुए ज़ौकका यह शेअर—

माल जब उसने बहुत रद्दोबदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा, अपनी बगलमें मारा॥

कुछ इस अन्दाजसे पढकर बैठ गये कि आस्मान दादो-तहसीनसे गूँज उठा और फिर किसी अन्य वक्ताका रग न जम सका। इसी तरह जैन-परिषदके अधिवेशनमें जहाँ रूढिवादी बहुत बडी सख्यामे दस्सा-पूजा प्रस्तावका विरोध करनेको डटे हुए थे। एक कुशल व्याख्याताने प्रस्तावपर बोलते हुए अन्धविश्वासोकी बखिया उधेडते हुए, और नवीन अच्छी बातोको ग्रहण करनेकी प्रेरणा देते हुए जब यह शेअर—

वस्लसे इंकार करना यह पुरानी बात है।
अब नये अन्दाज़ सीखो दिल जलानेके लिए॥

पढा तो अधिवेशनमे उनकी ऐसी धाक जमी कि विरोधी भी प्रस्तावके समर्थनमें हाथ उठा गये। इसीतरह यह शेअर—

खूब पर्दा है कि चिलमनसे लगे बैठे हैं।
साफ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं॥

कितना रगीन और चुलबुला है। मगर देखिए अल्लामाँ नियाज़ फतहपुरीके इस्तेअमालका सलीका—पाकिस्तान और भारतके मैत्रीपूर्ण समझौतेकी वार्ता जब प० नेहरू और लियाकतअलीमे चल रही थी। उन्ही दिनो लियाकतअली पाकिस्तानमे भारतको घूंसा भी दिखाते थे और समझौतेके लिए हाथ भी बढाते थे। उसीपर अगस्त १६५३ के निगारमे सम्पादकीय लिखते हुए लियाकतअलीको लक्ष करते हुए नियाज़ने अन्तमें लिखा कि—

साफ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं

पाकिस्तानके तीसरे प्रधान मत्री मुहम्मदअली जब मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए भारत आये तो बहुत खुलूसे दिलीसे वार्त्तालाप हुआ, जिससे जनताको आभास होने लगा कि अब भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध अच्छे होते चले जायेंगे। नियाज साहबने इसी सम्बन्धमे लिखा—

"वहरहाल यह मुलाकात वड़ी मुवारक मुलाक़ात थी और अगर यह सिल्सिला जारी रहा तो—

और खुल जायेंगे दो-चार मुलाकातोंमें"

पत्र-व्यवहारमें भी उर्दू-अदीव अशआरका इस्तेअ्माल इस कौशलसे करते है, गोया गागरमे सागर भर देते है। उर्दूमे पत्र-व्यवहार सम्बन्धी वीसो सकलन प्रकाशित हो चुके है। यहाँ हम अपने अभिन्न मित्र श्री सुमत-प्रसाद साहव जैन पी० सी० एस० के अपने पास आये हुए चन्द पत्रोका केवल उतना अश दे रहे है, जो अशआरसे सम्वन्धित है—

गुड़गाँव ७ मार्च १९४२

"ऊपरके पतेसे आपको अन्दाज़ा हो गया होगा कि मैं भी अव आपकी तरह जिलावतन हूँ और १५ दिनसे गुडगाँवके जगलमे खाक छान रहा हूँ। भई वडी खराव जगह है। यूँ कहनेको तो दिल्लीसे सिर्फ २० मील दूर और कुतुवसे १० मील है। पर ऐसे समझो जैसे सुखके साथ दुःख लगा हुआ है। वुस्अतका यह हाल है कि आपको न साइकिलकी जरूरत न घोडागाड़ी की। आप चाहे कही हों। कोई भी जगह ५ मिनिटके फासलेसे ज्यादा नही है। फिर न विजली, न नल, न सिनेमा, न चाट-पकौडी। वस वकील, अदालते और अहलकार; इनको चाहे ओढ लो चाहे विछा लो। यह विचार करके कि आपको तो इस दश्त (जगल) सैया ही (यात्रा) मे सालसे अधिक हो चुका, यह शेअ्र याद आ गया—

आ अन्दलीव मिलके करें आहो-ज़ारियाँ।
तू हाय गुल पुकार, मैं चिल्लाऊँ हाय दिल॥

शनिवारको अलवत्ता यार लोग दिल्ली भाग लेते है और फिर सोमवारकी सुवहसे पहले नही पलटते। पर, यह भी कुछ दिनोंकी मौज है। ऊखलीमें सर दिये वाद कही वहुत दिनोंतक मूसलसे वचाव हो सकता है? हाँ एक क्लव भी है। जहाँ शामको थोड़ा-वहुत ताश

मिल जाता है। पर तुम जानो, 'प्रकाश' और 'ज्योति' जैसे भाई लोगोंके बगैर क्या तागका मज़ा ? वे शौक़की महफिलें थीं, यहाँ धंधा समझो।

तुम्हीं कहो कि गुज़ारा सनम-परस्तोंका।
बुतोंकी हो अगर ऐसी ही ख़ू तो क्यों कर हो ?

रावलपिण्डी १८-१२-४६

....."पत्रका उत्तर तो तुरन्त दोगे ना ? अरे बाबा मुझे कहो तो मैं डालमियानगर भी आनेको तैयार हूँ। 'साइल'का वह शेअ़र याद दिला दूँ—

शबे-वअ़्दा वोह आ जायें, न आयें मुझको बुलवालें।
इनायत यूँ भी और यूँ भी, करम यूँ भी है और यूँ भी॥

रावलपिण्डी ९-१-४५

"नये सालकी बधाई। मगर आप हैं कि चिट्ठी ही नहीं लिखते। भई ऐसा नहीं चाहिए। बक़ौल 'जिगर'—

एक तजल्ली एक तबस्सुम
एक निगाहे-बन्दानवाज़

बस यही कुछ हमारे लिए काफी है।

रोहतक ९—२—४७

[पत्रोत्तर देनेमें मुझे विलम्ब हुआ तो बतौर उलाहना पत्रमें रविश सिद्दीकी केवल निम्न शेअ़र लिख भेजा।]

ज़िन्दगी क्यों हमातन गोश हुई जाती है।
कभी आया है जो आयेगा पैग़ाम उनका ?

रोहतक २४-३-४७

"आपको रावलपिण्डीके नूरपुरके मेलेके बारेमें बताया था ना ? जहाँ हरसाल कई सौ गानेवाली जमा होती हैं और बड़े ठाठका मेला

होता है। जमालके साथ तीन साल उस मेलेकी सैर की है। अबकी बा
झगडोंके कारण शायद मेला न हो सकेगा। मैंने जमालको लिखा कि फि
हरिद्वार ही हो आवें। यह लिखते हुए मिर्ज़ाका एक शेअर याद आ गया
आप भी सुनिए। कैसा चस्पाँ होता है? और दूसरे मिसरेमें 'ही' शब्द क्य
मजा दे रहा है।—

अपना नहीं यह शेवा कि आरामसे बैठें।
उस दरपै नहीं बाट तो कअ़्बे ही को हो आये॥

रोहतक १०-४-४७

"नवाब अच्छन मियाँ रामपुरवालोंका जिक्र आपसे किया था ना
वह जिनका 'सर्द-मुहरी'वाला शेअर था। आज सुबह न जाने किस धुन
बैठा था कि उनका एक और शेअर याद आया। अब तो खैरसे अंग्रेज
राजका वह हाल है कि—

साग़रको मेरे हाथसे लेना कि चला मैं।

वर्ना नवाबसाहबका यह शेअर अंग्रेज़के ९० सालके शासनपर कैस
यथार्थ टिप्पणी है—

असीरोंका यह एहतमाम अल्लाह-अल्लाह!
नशेमन भी है ज़ेरे-दाम अल्लाह-अल्लाह॥

शेअर सुनकर दाद नही दी तो या तो मुझपर बदमज़ाकीका इल्ज़ाम
आयेगा या आपपर बदज़ौकीका।

होश्यारपुर ११-१-५०

"आप कल चले गये और दिनचर्य्यामें जैसे एक रिक्ति-सी हो गई।
वह साहिरकी रुबाई तो याद है ना?

चन्द कलियाँ निशातकी चुनकर
मुद्दतों महवे-यास रहता हूँ

तुझसे मिलना ख़ुशीकी बात सही
तुझसे मिलकर उदास रहता हूँ

होश्यारपुर १७-११-५१

[पत्रोत्तर देना आपको स्मरण नही रहा तो याद आनेपर केवल यह शेअर लिख भेजा—]

लीजिए चचा (गालिब) का एक शेअर सुनिए—

मैं बेखुदीमें भूल गया राहे-कूए-यार।
जाता वगर्ना एक दिन अपनी खबरको मैं ॥

लुधियाना १७-३-५२

[सुमत साहबके पत्रोत्तर न देनेपर मैं भी उन्हे पत्र नही लिख सका तो आपने पत्रमे सिर्फ यह लिखा।]

"आखिर गुनाहगार हूँ काफिर नही हूँ मै"

लुधियाना १६-९-५२

[मेरे एक पत्रके जवाबमें—]

कुछ इस अदासे आपने पूछा मेरा मिज़ाज
कहना ही पड़ा "शुक्र है परवर्दिगारका"

लुधियाना १०-१-५३

नौ-भेद न हो इनसे, ऐ रहरवे-फरज़ाना।
कम-कोश तो है, लेकिन बेज़ौक नहीं राही ॥

—इकबाल

लुधियाना २५-७-१९५३

"देख रहा हूँ कि आप बहुत नाराज़ है। इस बातपर न मुझे तअ़ज्जुब है न रंज। इसलिए कि मै खुद भी अपने आपने बेहद नाराज़ हूँ।

मैं कि अज़-रूए-नंगे-बेनूरी
हूँ खुद अपनी नज़रमें इतना ख्वार
कि मैं अपनेको गर कहूँ खाकी
जानता हूँ कि आये खाकको आर।

यह लम्बी कहानी कभी लिखी जा सकी तो लिखूँगा।"

अमृतसर ४-३-५४

[मुझे पत्र देनेमे विलम्ब हुआ तो इस तरह मुझे स्मरण किया—]

मेरे खयालमें यूँ तेरी याद आती है।
कि जैसे साज़के तारोंमें रागिनीका खिराम॥
कि जैसे गुँचए-नौरसमें क़तरए-शबनम।
कि जैसे सीनए-शाइरमें वारिशे-इल्हाम॥

—सर्दार जअ़फ़िरी

अमृतसर ६-१०-५४

लीजिए एक शेअर सुनिए—

ग़मे-हयातके पैकर बदलते रहते हैं।
वही शराब है साग़र बदलते रहते हैं॥

और एक अ़दमका शेअर है। जिसने तड़पा-तड़पा दिया है। आपका शायद पढा हुआ हो—

आ ऐ ग़मे-दौराँ ! दरे-मैखाना है नज़दीक।
बैठेंगे ज़रा चलके वहाँ बात करेंगे॥

होश्यारपुर ४-८-५५

[अर्सेतक पत्र न लिखने पर किस मज़ेका तअ़ना दिया है—]
"लीजिए उस्ताद दाग़का, एक पुराना शेअर सुनिए—

देखो-देखो मुझपै बरसाते रहो तीरे-निगाह।
सैद जिस दम आँखसे ओझल हुआ, जाता रहा॥

होश्यारपुर २१-४-५५

"आपने तो पत्र लिखनेकी जैसे कसम खा ली हो। ऐसे भी कोई नाराज़ होता है—

बारहा देखी हैं उनकी रंजिशें।
पर कुछ अबकी सर गिरानी और है॥

देहली आये, प्रायः एक सप्ताह ठहरे। खबर भी न दी। लीजिए पिछले दिनों एक मज़ेदार शेअर सुना था, आपकी नज़र है—

भला यह बताओ कि फिर क्या बनेगा?
मनाते-मनाते जो हम रूठ जाएँ॥

पिछले दिनों नवाशहर जाना पड़ा। वापिसीमें गढ़शंकरके डाक-बँगलेमें कुछ देरके लिए ठहरा। वे तीन-चार दिन आँखोंमें फिर गये, जब उस बँगलेमें बैठकर गालिब-नामा तैयार किया जा रहा था।

मुझे याद है वह ज़रा-ज़रा, तुम्हें याद हो कि न याद हो

अनवर साबिरीके दो शेअर सुनिए—

किसने आवाज़ दी रोते-रोते?
चौंक उठा हुस्न भी सोते-सोते॥
दर्दे-दिलकी मुझे फ़िक्र क्यों हो?
हो ही जायेगा कम होते होते॥

आजकल क्या कुछ लिखा जा रहा है। प्रूफरीडरोंकी लिस्टसे तो शायद मेरा नाम सदाके लिए कट चुका होगा'—

तुम जानो तुमको ग़ैरसे जो राहो-रस्म हो।
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥

होश्यारपुर २६-४-५५

"मैं दो दिनके लिए लाहोर चला गया था। राजा गुलाममहदी और अनवर साहबसे मुलाकात रही। एक छोटी-सी मुशाइरेकी सोहबत भी बन गई। हफीज जालन्धरी आये हुए थे। उनकी जबानमें अब भी वही पहिलेका-सा जादू है। छोटी बहरमें एक गजल पढी। तड़पा-तड़पा दिया। चार शेअर जो हाफिज़ेमें महफ़ूज़ रह गये, हाज़िरे-ख़िदमत है—

सिमट आये हैं घरमें वीराने।
तू किधर जा रहा है दीवाने॥
सुबह होते ही हो गये रुख़सत।
शमअ़के जाँ-निसार परवाने॥
कर रहा हूँ तलाश अपनोंकी।
जबसे गुम हो गये हैं बेगाने॥
बढ़ गई बात अ़र्ज़े-मतलबपर।
मुख़्तसर यह कि वोह नहीं माने॥

हरिसदन मंसूरी १५-९-५५

[मेरे पत्रोत्तर न देनेपर उलाहनेमें केवल यह पत्र लिखा—]

'आपने शेरो-शाइरी और शेरो-सुख़न पाँचो भागोंके प्रूफ अत्यन्त परिश्रमसे देखे। आपको वहम है कि शायद आगेके हिस्सोंके प्रूफ़ आपको न भेजूं। मगर जब आगेके हिस्से कम्पोज़ ही नहीं तो प्रूफ कहाँसे भेजता? उसीका उलाहना है।

लालेकी सुन्दाईपे सबकी नजर गई।
दागे-जिगर कि राज़े-निहाँ-का-निहाँ रहा॥
—दीवान

सख्तियाँ बढ़ रही हैं आलमकी।
हौसले मुस्कराये जाते हैं।
—खुर्शीद

अगर्चे पीर होगये, गई न इश्क-बाजियाँ।
कि मुख्तसर न हो सकीं उम्मीदकी दराज़ियाँ॥
गिरहमें गो दिरम न थे, मिली शराब बेतलब।
रहेंगी याद साकिया! तेरी गदा-नवाजियाँ॥
जो उनके दरपै जा रहे तो कोई ख़ास बात थी।
वगर्ना जानते हैं सब हमारी बेनियाज़ियाँ॥
—दीवाना

होश्यारपुर ७ जून १९५५

'लाहोरका क्या पूछते हो? पुराने दोस्तोंमे अनवर और ग़ुलाममहदीके अलावा कोई नहीं मिला। खुर्शीद रावलपिण्डीमे हैं, सबा और अशरफ़ कराचीमे। मुद्दतों बाद जो जाना हुआ तो शौकका यह आलम था कि हर अजनबी पर हबीबका गुमान होता था। और उन लोगोंकी ख़ातिरदारी और मुहब्बत देखकर जी भर-भर आता था।' चार शेअ़र सुनिए—

उस दौरमें जीनेकी दुआ माँग रहा हूँ।
जिस दौरमें मरनेकी दुआ काम न आये॥
काम आया न तूफ़ाने-बहारोंमें नशेमन।
सब कामके तिनके थे, मगर काम न आये॥
—'सबा'

चिराग़े-हुस्न जलाओ बहुत अँधेरा है।
नक़ाब रुख़से हटाओ बड़ा अँधेरा है।

जिसे खिरदकी ज़बाँमें शराब कहते हैं।
वह रोशनी-सी पिलाओ बड़ा अँधेरा है।

—अज्ञात

उक्त उदाहरणोसे स्पष्ट हो गया होगा कि गज़लका शेअ्र अपनेमें कई-कई भाव सँजोये हुए होता है। हर व्यक्ति अपनी रुचिके अनुसार उसके भाव ग्रहण करता है।

'मीर'के दो शेअ्र सुनिए —

असबाब मुहैया थे, सब मरने ही के लेकिन—
अब तक न मुए हम जो, अन्देशा कफ़नका था॥

———

इश्क़की सोजिशने दिलमें कुछ न छोड़ा क्या करें।
लग उठी यह आग नागहाँ कि घर सब फुँक गया॥

मीरने न जाने किस आलममे यह शेअ्र कहे होगे और आपका ज़ौके-सलीम न जाने क्या असर कुबूल करेगा। मगर मुझे तो पहिला शेअ्र मुस्लिमलीगी मिनिस्ट्रीके युगमें पड़े हुए बगालके अकालकी याद ताज़ा कर रहा ह। अकालकी विभीषिकाने मरनेके सब साधन उपलब्ध कर दिये थे। यदि कफनपर कण्ट्रोल न होता तो हर अकाल-पीड़ित जीते रहनेकी लअ्नत बर्दाश्त न करके सहर्ष मृत्युका आलिंगन करता।

दूसरा शेअ्र भारत-बटवारेके समय हुए लंकाकाण्डपर कहा गया प्रतीत होता है। अब यह मेरी समझ ही तो है। वर्ना यह तो मैं भी जानता हूँ कि मीरके युगमे न बगालमें अकाल पड़ा था न भारत-विभाजन हुआ था। उसने तो न जाने किस भावावेशमे कहे होगे। और यही गज़लकी विशेपता है कि वह कभी अप्रासंगिक नही होती। उसके शेअ्र हर मौका-महलके लिए चुने जा सकते हे।

डालमियानगर
५ दिसम्बर १९५७ ई०

अ० प्र० गोयलीय

सिंहावलोकन

पूर्वार्द्ध

[प्रारम्भसे ई० स० १९५७ तककी इश्किया गाइरी]

२

उर्दू-शाइरीके आदि कवि 'वली' दक्खनी (१६६८—१७४४ ई०)से लेकर वर्त्तमानकालीन 'मजाज़' लखनवीतक केवल इश्क ही गज़लका प्रधान और मुख्य विषय रहा है। मान-

ग़ज़लका मुख्य लक्ष्य

वमें-से आत्मा निकलनेपर पुद्‌गल तो शेष बचता है, परन्तु गज़लमें-से इश्क निकाल दिया जाय तो कुछ भी बाकी नहीं रहता। इश्क़ ही गज़लकी आत्मा एवं जिस्म है। गज़ल-गो शाइरोंके अतिरिक्त नज़्म-गीत-गो शाइरों, यहाँ तक कि प्रगतिशील नवयुवक शाइरोंका भी इश्क़ एक दिलचस्प और खास मौज़ूँ रहा है।

ऐ 'वली'! रहनेको दुनियामें मकामे-आशिक[1]।
कूचये-ज़ुल्फ[2] है या गोश-ए-तनहाई[3] है॥
—वली

वोह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्स नुस्खये-इश्कका[4]।
कि किताब अक़्लकी ताकपर[5] ज्यूँ धरी थी त्यूँ ही धरी रही॥
—सिराज

इश्क-ही-इश्क है जहाँ देखो।
सारे आलममें फिर रहा है इश्क॥
इश्क माशूक, इश्क आशिक है।
यानी अपना ही मुब्तला[6] है इश्क॥
कौन मकसदको[7] इश्क बिन पहुँचा?
आरज़ू इश्क, मुद्दआ[8] है इश्क॥

---

[1]प्रेमियोंके रहने योग्य स्थान; [2]प्रेयसीकी लटें अथवा प्रेयसीका कूचा; [3]एकान्त स्थान; [4]प्रेमपाठ; [5]आलेपर; [6]आशिक़; [7]लक्ष्यको; [8]अभिप्राय।

इश्क है तर्ज़-तूर इश्कके तईं।
कहीं बन्दा कहीं खुदा है इश्क[1]॥

—मीर

इश्कसे तबीयतने जीस्तका[2] मज़ा पाया।
दर्दकी दवा पाई, दर्द बे दवा पाया[3]॥

—ग़ालिब

कोई समझे तो एक बात कहूँ।
इश्क तौफीक[4] है, गुनाह नहीं॥

—फिराक गोरखपुरी

मकामे-इश्कको हर आदमी 'सीमाब' क्या समझे?
यह है इक मर्त्तबा जो मावराये-आदमीयत[5] है॥

—सीमाब अकबराबादी

मुहब्बतका इस पीरसे दर्स लो।
खसो-खारसे[6] भी मुहब्बत करो॥
मुहब्बतकी दुनियामें गुंचे खिलाओ।
शरारे बुझा दो, सितारे उगाओ॥

---

[1]खुदा मुहब्बत है और मुहब्बत खुदा है—इजील। [2]जीवनका; [3]प्रेम-रहित जीवन निरर्थक है। प्रेम ही मनुष्यमे जीवन डालता है। 'गालिब' फर्माते हैं—इश्ककी वजहसे हमको जीस्त (ज़िन्दगी) का मज़ा आया। वगैर इश्क तो यह ज़िन्दगी दर्द (दूभर) थी। इश्क इस दर्दकी दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना है कि इश्ककी कोई दवा नही, यह स्वय एक असाध्य रोग है। [4]योग्यता; ईश्वरकी देन; [5]मनुष्यतासे भी बढकर; [6]घास-काँटोंसे।

न हिन्दू, न गवरू,[1] मुसलमाँ बनो।
अगर आदमी हो तो इन्साँ बनो॥
नहीं तो हलाकतमें[2] ढल जाओगे।
ख़ुद अपने जहन्नुममें जल जाओगे॥

—जोश मलीहाबादी

इश्कका ज़ौके-नज़ारा[3] मुफ्तमें बदनाम है।
हुस्न खुद बेताब है, जलवा दिखानेके लिए॥

—मजाज़

इश्क ही गज़लका प्राण, मन और शरीर सब कुछ होनेका कारण यह है कि गज़लके शाब्दिक अर्थ ही इश्किया अशआर कहने और औरतोंकी बातें करनेके हैं। गज़ल यूँ तो अरबी-भाषाका शब्द है, मगर ईरानियोंने इसे विशेष तौरसे अपनाया है। वहाँ हज़ार वर्षसे ज्यादा गज़लका दौर-दौरा रहा। 'रूदकी' जो कि ९१० ई० के लगभग जन्नतनशी हुआ, गज़लका बड़ा उस्ताद था। फारसी-पुस्तकोंमें गज़लकी परिभाषा इस प्रकार की गई है—

गज़लका अर्थ

सुख़न अज़ ज़नान (या अज़् माशूक़) गुफ़्तन

जिसका सही अर्थ है—"औरतोंकी बातें करना, यानी औरतोंका ज़िक्र करना।" लेकिन प्रारम्भमें किसी लेखकने 'अज़' शब्दके भ्रममें पड़कर गज़लका अर्थ 'औरतोंसे बातें करना' लिख दिया और बादके लिखनेवाले उसी भूलको दोहराते रहे[4]। यदि 'औरतोंसे बातें करना' कहना अभीष्ट होता तो—सुख़न-बा-ज़नान कहते न कि अज़ ज़नान।[5]

---

[1]अग्निपूजक; [2]मृत्युकी तरफ पतितोन्मुखी अवस्थामें, [3]देखनेकी उत्सुकता; [4]उर्दू-कोशमें भी यह ग़लती होनेके कारण हमने स्वयं पहले भागमें यह भूल दोहराई थी; [5]प्रो० मसूद हसन रिज़वी—निगार फरवरी १९४६ पृ० ४५।

अत. गजलका अर्थ हुआ—औरतोका जिक्र करना, उनके इश्क़का दम भरना और उनकी मुहब्बतमे मरना।

माँ-वाप, भाई-वहन, पत्नी-सन्तान और इष्ट-मित्रोसे भी मुहब्वत होती है; परन्तु इस मुहब्वतमें और गजलके इश्को-मुहब्वतमे वहुत वड़ा अन्तर है। जिस व्यक्तिके देखने-सुननेसे काम-वासना उदित हो; उसके सम्वन्धमे अपने मनोभावोको, जिस कवितामे प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको गजल कहते है। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, कौटुम्बिक-स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन गज़लका विषय नही।[1]

गज़लका उपयुक्त पात्र

काम-वासना सम्वन्धी चाहे जैसे विचार, चाहे जैसी भाषामे, चाहे जिस ढगसे व्यक्त कर देनेसे गज़ल नही वनती। गजलका अपना छन्द-शास्त्र और व्याकरण है। अपनी ख़ास ज़वान, तर्ज़े-अदा और लवोलहजा है। उसका अपना सीमित और विशेष क्षेत्र है। अत्यन्त कोमल और रसभरी भावनाओसे उसका निर्माण होता है।

वर्त्तमानयुगीन गज़लमे तो सभी तरहका मिश्रण पाया जाता है, अव वह सिर्फ इश्किया शाइरीतक ही सीमित नही रही। उसका क्षेत्र व्यापक हो गया है। धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि सभी भावोका उसमे समावेश हो गया है और वह हर समयोपयोगी विचारोको ग्रहण करनेकी क्षमता रखती है। लेकिन सवसे पहले गज़लमे तसव्वुफ (ईश्वरीय भावो) और फलसफे (दार्शनिक विचारो) का मिश्रण हुआ। इन मिश्रण करनेवालोमें दो प्रकारके शाइर थे।

गज़लमें मिश्रण

एक वे जो दिलमें इश्ककी आग रखते थे और उसे व्यक्त करनेवाला

---

[1]विशेष जानकारीके लिए देखे शेरोसुख़न पहला भाग, पृ० २३५-७४।

मस्तिष्क और हृदय भी। मगर उस आगको ज़ाहिर कर सकनेका हौसला उनके पास नही था। सामाजिक बन्धनोंसे संघर्ष करने, पारिवारिक मर्यादाओंको तोडकर कूचये-इश्कमें कदम रखने और मैखानेकी तरफ मुंह करनेका उनमें साहस नही था, और न उनमें इतनी सामर्थ्य थी कि वे अपने इश्क़को सीता-राम, राधा-कृष्ण, सत्यवान-सावित्री, नल-दमयन्ती, पृथ्वीराज-सयोगिता—जैसा पवित्र प्रेम बना सकते। वे किसीकी चितवनसे घायल होकर अपने घावोपर कल्पित ईश्वररूपी प्रेयसीकी मुसकानका मरहम लगाते रहे, और उनकी प्यासी आत्मा लग-ज़िश खाकर किसीके कदमोमें गिरनेके बजाय कौसरो-तसनीमकी मृग-मरीचिकासे अपनी प्यास बुझाती रही। बकौल नियाज फतहपुरी—"जो गुनाह वे यहाँ न कर सकते थे, उसे दूसरी दुनियापर उठा रक्खा। जहाँ दुनियाका हर गुनाह अतैया-ए-खुदावन्दी (ईश्वरीय देन) की हैसियत अख़्तियार कर लेता है।"[१]

दूसरे वे शाइर जो आलमे-शबाब (जवानी) में तो मनचाहे गोते खाते रहे, परन्तु अन्तमें वृद्धावस्था और शक्तिहीनता आदिके कारण 'अल्लाहू' 'अल्लाहू' पुकारने लगे। यानी उनका इश्क इहलौकिकसे पारलौकिकमें परिणत हो गया और यही पारलौकिक इश्क हकीकी, रुहानी, सूफियाना, आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे मशहूर होता गया; और दुनियावी इश्क, मजाज़ी इश्क कहलाने लगा।

इसप्रकार गज़ल-गो शाइर—हकीकी और मजाज़ी—दो शाखाओंमे विभक्त हो गये। सर्वसाधारण इसी ससारमें उत्पन्न अपने-जैसे हाड-

इश्कके भेद

मासंसे बनी प्रेयसीसे प्रेम करना चाहते हैं। हकीकी शाइर भी अपने निराकार ईश्वरका जलवा इसी दुनियावी प्रेयसीके रूपमें साकार देखना चाहता है। अतः

---

[१]निगार, जनवरी १९४१, पृ० ४।

इन सूफ़ी शाइरोने अपने इश्कके इज़हारके लिए उन सभी उपमाओ, उदाहरणोका उपयोग किया, जो मानवी-प्रेमसे सम्वन्धित है।

बे-हिजाबी यह कि हर ज़र्रेमें जलवा आशकार।
इसपै घूँघट यह कि सूरत आजतक नादीदा है[1]॥
हश्रमें मुंह फेरकर कहना किसीका हाय-हाय—
"'आसी'-ए-गुस्ताख़का हर जुर्म ना वख़्शीदा है[2]॥"

उक्त दोनो शेर प्रसिद्ध सूफी शाइर 'आसी' ग़ाज़ीपुरीके है, जिनका परिचय शेरोसुख़नके तीसरे भागमें दिया गया है। 'घूंघट' और 'मुँह फेरकर' शब्द प्रकट करते हैं कि शाइरके मस्तिष्कमें किसी घूँघटवाली हया-परवर नारीका तसव्वुर है जिसने अपनी मानसिक यौन-सम्वन्धी भूखको ईश्वरीय-प्रेमकी आड़में शान्त करनेका विफल प्रयास किया है। इन्हीका एक शेर और है—

तुम्हीं सच-सच बताओ, कौन था शीरींके पैकरमें ?
कि मुश्ते-ख़ाककी हसरतमें कोई कोहकन[3] क्यों हो ?

इस शेरके भावसे प्रकट होता है कि शाइरके समक्ष वार्तालाप करते हुए, ईश्वर मानवी-प्रेयसीके रूपमे उपस्थित है। 'रियाज' ख़ैरावादीने इसी कल्पनाको और भी मोहकरूप दिया है—

---

[1]ईश्वरकी वे-हिजावीका यह आलम है कि वह कण-कणमे नज़र आ रहा है। फिर भी मुँहपर घूंघट इस गज़वका है कि आजतक उसकी सूरत देखनेमे नही आई।

[2]हश्रमें खुदाके सामने पहुँचे तो उसने हमे देखकर मारे हयाके अपना मुँह फेर लिया और चुपके-से वोला—"यह तो वही मेरा गुस्ताख़ आशिक़ 'आसी' है, जिसकी उद्दण्डताएँ क्षमा करने योग्य नही।"

[3]शीरीका आशिक फ़रहाद।

हम आँख बन्द किये तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वह आ जाय तो क्या हो ?

यहाँ भी 'छम' शब्द किसी इन्सानी परीपैकरके नूपुरोकी 'छम-छम' शब्दका तसव्वुर है, और सचमुच कहो निराकार ईश्वरका दिव्यदर्शन किसी मोहिनीके रूपमें हो सके तो, उस प्रेमीके भाग्यका क्या कहना ?' इसी भावको सर इकबालने कभी यूँ व्यक्त किया था—

कभी ऐ हकीकते-मुन्तजिर ! नजर आ लिबासे-मजाजमें।
कि हजारों सजदे तडप रहे हैं, मेरी जबीने-नियाजमें[1]॥

और एक शाइरने इसी भावको इस प्रकार कहा है—

यह बजा कि खिलवते-दिलमें है, तू हजार रंगसे जलवागर।
जरा आके सामने बैठ जा कि नजरको खूए-मजाज[2] है॥

और यह खूए-मजाज ही एक रोज इन्सानको वनो-पर्वतोकी खाक छनवाती है, सर फोडनेको मजबूर करती है, खूनके आँसू रुलाती है। दो-दो कौडीके आदमियोकी नसीहतें सुनवाती है। आशिके-मजाजीको कूचये-इश्कमे जो रुसवाइयाँ नसीब होती है, कौटुम्बिक और सामाजिक संघर्षोंसे जो टक्करें लेनी पडती है, वह आशिके-हकीकीके भाग्यमे कहाँ ?

यूँ तो आशिके-हकीकी भी अपने हबीब (खुदा) का तसव्वुर (ध्यान) आशिके-मजाजी जैसा ही रखता है। वह भी उसे किसी घूँघटकी ओटमें छमछमवालीके रूपमे देखना चाहता है। मगर दोनोंके इश्कमे पृथ्वी-आकाश-का अन्तर है। आशिके-हकीकी मस्जिद या खानकाहमे बैठा हुआ अपने

---

[1]निराकार ईश्वर, कभी तो साकार रूपमें नजर आ; मेरे विनम्र मस्तकमें तेरे दर्शनके लिए हजारो सजदे बेचैन और उत्सुक है।
[2]प्रत्यक्ष देखनेका अभ्यास।

२०७८

हबीबके तसव्वुरमे रोने-हँसनेके सिवा और कुछ भी नही करता। न वह आशिके-मजाज़ीकी तरह हिज्रे-यारमे तारे गिननेको मजबूर है, न आहो-फ़ुग़ाँसे ही उसे कभी वास्ता पड़ता है। न कभी उसे विरह-ज्वर ही सताता है, न कभी उसे अपने हबीबकी यादमे एडियाँ रगड़नी पडती है। न कभी उसे हबीबकी जुदाईमे तिल-तिलकर घुलनेका अवसर मिलता है और न कभी उसको प्रेयसीकी झिडकियाँ सहने, रूठने-मनानेके काबिले-रश्क (ईर्ष्या-योग्य) दिन ही देखने नसीब होते है। और न 'मीर' की तरह उसे यह कहना मयस्सर होता है—

इस आशिकीमें इज्ज़ते-सादात भी गई

जो शऊर और तौर-तरीका इश्के-मजाजीमे नसीब होता है, वह इश्के-हकीकीमे मयस्सर कहाँ? बकौल मीर—

इश्क बिन यह अदब नहीं आता

इसीलिए बहुत-से आलोचक हकीकी रगको इश्किया शाइरी माननेको तैयार नही। वे इसे हकीकी, रुहानी, सूफियाना, तसव्वुफ और मारफतकी शाइरी कहते है, मगर इश्किया शाइरी माननेको हरगिज तैयार नही।

अब हम उस इश्किया शाइरीका ज़िक्र करते है, जो इश्के-मजाज़ीसे ताल्लुक़ रखती है, और जिसका हबीब कोई खुदा या ईश्वर नही, बल्कि इसी दुनियाका परीपैकर है। इस किस्मकी शाइरीके भी शाइर दो समूहोमे विभक्त किये जा सकते है। एक वे जिन्होने स्वानुभवको अपने कलाममे व्यक्त किया। दूसरे

स्वानुभूत और काल्पनिक

वे जिन्हे कभी किसीकी तिर्छी नज़रसे न तो घायल होना नसीब हुआ, न कभी पीरे-मुगाँकी चौखटपर सर टेकना मयस्सर हुआ। नकली आशिक-ओ-मैख्वार बने हुए रवायती शाइरी करते रहे। उम्रभर किसीके

ग़मे-हिज्रमें आँखसे एक आँसू तक न टपका, मगर शाइरीमें दरिया बहा दिया—

अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामने-सहरामें[1] वर्ना इस क़दर कब घेर था?

—दर्द

बरस ऐ अब्र[2]! जितना चाहे तू, अब तेरी बारी है।
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दरिया बहाता था!

—ज़िया

चार-पाँच आदमियोंकी जितनी ख़ूराक खा जाये, दो-दो नौकर जिनके जूठे बर्तन उठा पाये, क़वी-हैकल होनेकी वजहसे दुमकटे भैंसे कहलायें। फिर भी फ़िराक़े-यारमें यह कहनेसे बाज़ न आये—

इन्तहा-ए-लाग़रीसे[3] जब नज़र आया न मैं।
हँसके वोह कहने लगे "बिस्तरको झाड़ा चाहिए"[4]॥

—नासिख़

चाहे उम्रभर एक रोज़को भी बुख़ार न आया हो, पर शाइरीमें तपे-इश्क़में ऐसे जले कि मुर्दोंमें जान डाल देनेवाले ईसामसीहने नब्ज़ देखी तो उनकी भी नब्ज़ जल उठी—

नब्ज़ देखी तो हरारतसे जली नब्ज़े-मसीह।
तेरे बीमारे-मुहब्बतका मदावा[1] कैसा?

—अमीर मीनाई

---

[1]जंगलोंमें; [2]बादल, [3]अत्यन्त निर्बलताके कारण, [4]यह शेर उन नासिख़का है, जो ४-५ आदमियों जितना खाना भी खाते थे और दुमकटे भैंसे भी मशहूर थे; इलाज असम्भव है।

गमे-इश्कका सदमा कभी लमहे भरको न उठाया, न कभी किसीकी यादमे नीदे उचाट हुई, मगर कहते यही रहे—

रातको नींद है न दिनको चैन।
ऐसे जीनेसे ऐ ख़ुदा गुज़रा[1]॥

—सोज़

उम्रभर इमामे-मस्जिद बने रहे, हरसाल हजको जाते रहे, मगर दूनकी यही हाँकते रहे कि कूच-ए-बुताँमे बिस्तर लगाये बैठे हैं—

मुझ बे-नवा-गदाको[2] पूछे 'अमीर' वोह क्या?
शाहोके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए हैं॥

—अमीर मीनाई

कभी एक वक्तकी नमाज़ कजा नही की, बूंदभर शराब हलकके नीचे न उतारी, मगर वजू करते हुए भी मश्के-सुख़न यही था—

धोना है दागे-जाम-ए-अहराम[3] सुबह-सुबह।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

---

[1]बाज़ आया; [2]ख़ामोश फकीरको; [3]'जामये-अहराम' उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर काबेकी परिक्रमा की जाती है। जामये-अहराम पहननेके बाद भी शाइर शराब पी बैठा और वह पवित्र वस्त्र शराबसे खराब कर लिया। अब शाइरकी दूसरी शोख़ी देखिए कि वहीके धर्माचार्यसे उसे साफ करनेको पानी मँगवाता है। यह शेर उन्ही 'रियाज़' साहबका है, जिन्होने न कभी शराब छुई न कभी नमाज़ क़ज़ा की।

यहाँ तक कि बहुत-से शाइरोंने तो ८-१० सालकी उम्रमें ही शेर कहना प्रारम्भ कर दिया। जब कि वे यह भी न जानते थे कि माशूक है किस मर्ज़की दवा ? और उनके शेर पढिए तो मालूम होता है कि कोई खुर्रांट आशिक आप बीती दास्ताने-ज़हरे-इश्क बयान कर रहा है। अधिकाश गज़ले ऐसे ही अनुभव-हीन नकली आशिक-शाइरो-द्वारा कही हुई है। यही कारण है कि हृदयस्पर्शी अशआर बहुत कम देखनेको मिलते है और रवायती एव कल्पित शाइरीकी भरमार है। चूंकि गज़ल नाम ही इश्कका है, इसलिए इस स्कूलमे जो भी दाखिल होगा इश्किया शेर कहेगा। इस स्कूलका श्रीगणेश ही हुस्नो-इश्कसे होता है। हरजाई, अदू, कासिद, दरबान, ज़ालिम, बेवफा कातिल, नाला-ओ-फुगाँ, वस्लो-हिज्र आदि इसकी वर्णमाला है। चन्द दिनके अभ्यासने ही विद्यार्थी महारती लेने लगता है। इस स्कूलका स्नातक चाहे मजनूं हो, चाहे ज़ाहिदे-खुश्क अथवा कमसिन छोकरा। थोड़े दिनके अभ्यासके बाद इश्किया शाइरीका प्रमाण पत्र दे दिया जाता है। चाहे उनकी योग्यता और अनुभवमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर हो।

अनुभवहीन एवं फर्ज़ी तथा स्वानुभवी आशिकोंकी शाइरीको भी दो हिस्सोंमे तकसीम करना होगा। एक पाक इश्क़िया शाइरी और दूसरी बाज़ारी इश्किया शाइरी।

पाक इश्किया शाइरी वह है कि एक बार जिसको दिल दे दिया, उम्रभर उसीके इश्कका दम भरते रहे। चाहे सफलता मिले या न मिले, उन्हीकी यादमें उम्र काट दी। यह वह पाक इश्क है, जिसके बारेमें

पाक इश्क

इजीलमे कहा गया है कि खुदा मुहब्बत है और मुहब्बत खुदा है। यही इश्क आदमीको इन्सान बनाता है और फिर खुदाके मर्तबेको पहुँचाता है। इस इश्कमे अपने हबीबके प्रति आशिककी वही आसक्ति और पवित्र भावना होती है, जो सीताके प्रति रामकी, राधाके प्रति कृष्णकी थी।

बाजारी इश्किया शाइरी कामलोलुप, विषयासक्तोकी शाइरी है जिनकी प्रेयसियाँ—वेश्याएँ और पतिता नारियाँ है, और जो स्वय भी इस गुलशने-हुस्नमें भौंरे बने मँडराते है।

हमें अफसोस है कि हम प्राचीन शाइरीसे पाक इश्किया शाइरीके उदाहरण अधिक नही दे सकते। क्योकि उर्दू-शाइरीका जन्म और विकास ही मुगलिया सल्तनतके जवालके वक्तमें हुआ। अतः वे सब बुराइयाँ—विलासिता, तमाशबीनी, मैनोशी आदि सब इसमे प्रविष्ट कर गईं, जो तत्कालीन शासकोमें थी, और जिनके कारण उन्हें शासनसे हाथ धोना पडा। उर्दू-शाइरी अपने जन्मके थोडे ही दिन बाद फारसी शाइरी-का अनुकरण करने लगी थी। धीरे-धीरे उसमें वे सब अवाछनीय तत्त्व आते गये, जिससे उर्दू-शाइरी पाकीजा होनेके बजाय उत्तरोत्तर बाज़ारी और अस्वाभाविक होती गई।

हाँ तो हम पाकइश्कके उदाहरण देना चाह रहे थे। सम्भवत. उर्दू-शाइरीमे सबसे पहले इस किस्मका तसव्वुर 'मीर' के यहाँ मिलता है—

फूल, गुल, शम्सो-कमर सारे ही थे।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत[1]॥

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें।
ख्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम[2]॥

इतने उन्नत विचारोको व्यक्त करनेके बाद पवित्र-प्रेमकी व्याख्या और क्या शेप रह जाती है?

---

[1]दुनियामे गुलबदनी भी है, और चन्द्रमुखी भी। मगर हम अपने दिलको क्या करे? उसे तुम ही पसन्द आये; तुम्हारे सिवा सब हेच है।

[2]विश्व-सुन्दरियोंमें तुम्ही एक हमारी प्रियतमा हो, तुम्ही हमारी अभिलापा हो, तुम्ही हमारे जीवनका लक्ष्य हो।

'आतिश' ने अपनी प्रियतमाकी पवित्रता इन शब्दोमें व्यक्त की है—

चश्मे-ना-महरमको बर्के-हुस्न कर देती थी बन्द।
दामने-इस्मत तेरा आलूदगीसे पाक[1] था॥

'ज़ौक' ने भी कैसा अछूता और पाकीज़ा शेर कहा है—

मैं ऐसे साहिबे-इस्मत परी-पैकरपै आशिक़ हूँ।
नमाज़ें पढ़ती हैं हूरें, हमेशा जिसके दामनपर[2]॥

प्राचीन शाइरोंके हमने ऊपर चार शेर नमूनेके तौरपर दिये है, ताकि मालूम हो सके कि पाकीज़ा इश्कसे हमारी क्या मुराद है। वर्त्तमान युगीन शाइरोंके इस किस्मके हज़ारो शेर उनके कलाममें यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर होंगे, और कुछ ऐसे अशआर प्रसगानुसार हम आगे भी देंगे।

नापाक इश्क और बाजारी माशूक

हम समझते हैं बाजारी इश्किया शाइरीके उदाहरण देनेकी आवश्यकता नही। केवल कोकशास्त्रका नाम ले देने मात्रसे विज्ञ मनुष्य समझ जाते है कि उसके अन्दर क्या भरा हुआ है। गज़लका माशूक प्राय इन विशेषणोसे सम्बोधित किया जाता है—

१—शोख़
२—बे-अदब
३—बे-वफ़ा
४—बे-मुरव्वत
५—बे-रहम
६—बदज़बान
७—संगदिल
८—ज़ालिम
९—हरजाई
१०—कातिल

---

[1] तेरा शील अत्यन्त पवित्र है, उसमे कोई बाल नही आ सकता। तेरा रूप इतना तेजवान है कि कामुक व्यक्ति तुझे देख नही सकते, उनके नेत्र बन्द हो जाते है।

[2] मैं ऐसी शीला सुन्दरीपर आसक्त हूँ कि जिसके आँचलपर हूरें नमाज़ पढ़नेको लालायित है।

११—जल्लाद
१२—दगाबाज
१३—जालसाज़
१४—वायदा-फरामोश

ऐसे क्रूर, हत्यारे, दुराचारी, कपटी माशूकका तसव्वुर उर्दू-शाइरीमे कहाँसे और कैसे आया? हमारा दावा है कि किसी जल्लाद और कस्सावतककी ऐसी सन्तान चराग लेकर ढूंढनेपर भी नही मिलेगी, जिसपर उक्त सभी विशेषण मौज़ूं हो सके। फिर इस तरहके अशआर किस माशूकके तसव्वुरमे लिखे गये?

शोख़

अमीर—कहा जो मैंने कि यूसुफको यह हिजाब[1] न था।
तो हँसके बोले—"वोह मुँह क़ाबिले-नकाब न था"॥

दाग़— जब यह सुना कि दागका आज़ार[2] कम हुआ।
ज़ानूपै हाथ मारके बोले—"सितम हुआ"॥
अयादतको[3] मेरी आकर वोह यह ताकीद[4] करते है—
"तुझे हम मार डालेंगे, नहीं तो जल्द अच्छा हो॥"

दर्द— फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर।
लग जाय देखिए न किसीकी नज़र कहीं॥

अमीर मीनाई—
यह कज़ा[5] है कि अदा आपकी सुब्हान अल्लाह!
सफ[6] उलटती है जो मस्जिदमें जनाब आते हैं!

बेअदब

इंशा— पूछा किसीने मुझको उनसे कि कौन है यह?
तो बोले हँसके—"यह भी है इक गुलाम मेरा॥"

---

[1]शर्म, लाज; [2]दुख; [3]रोगीका हाल पूछनेको; [4]आदेश, हुक्म, चेतावनी देते हैं; [5]मृत्यु; [6]नमाज़ियोकी कतारें।

अफ़सोस— सूरत तुझे हक़ने दी परी-सी।
पर आदमीयत न दी ज़री-सी॥

बेवफ़ा

असर देहलवी—

बेवफ़ा तेरी कुछ नहीं तक़सीर[1]।
मुझको मेरी वफ़ा[2] ही रास नहीं॥

दर्द— नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाईका तेरी हरगिज़।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो॥

दाग़— ख़ुमार-आलूदा[3] आँखें बल जबींपर[4] दर्द है सरमें।
रहे तुम रात-भर बेचैन किस कम्बख़्तके घरमें?

हज़ारों आते-जाते हैं किसीसे कुछ नहीं मतलब।
फ़क़त इक चौकसी करता है उनका पासबाँ[5], मेरी॥

बेमुरव्वत

क़ायम चाँदपुरी—

ज़ालिम-ख़बर तो ले कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँ-ओ-मुज़तरब[6] पसे-दीवार[7] है कोई॥

बेरहम

क़ायम चाँदपुरी—

समझके शीश-ए-दिलको पटकियो ऐ बुते-मस्त!
बजाय बादा[8] लहू है, इस आबगीनेमें[9]॥

---

[1]दोष; [2]नेकी; [3]नशीली; [4]माथेपर; [5]दरबान; [6]चीत्रता, तड़पना; [7]दीवारके पीछे; [8]शराबके बजाय; [9]प्यालेमें।

अमीर मीनाई—

वोह बैठे-बैठे जो दे बैठे क़त्ले-आमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब,[1] न था॥

बदजबान

इंशा— ख़याल कीजिए क्या आज काम मैंने किया।
जब उसने दी मुझे गाली, सलाम मैंने किया॥

मोमिन— लगती है गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
क़ुरबान तेरे, फिर मुझे कह ले इसी तरह॥

दुश्नामे-यार[2] तब-ए-हज़ीँपर[3] गराँ[4] नहीं।
ऐ हमनफ़स[5]! नज़ाकते-आवाज़ देखना॥

दाग़— मुझे कोसें, बलासे गालियाँ दें।
मगर वोह नाम लें हर बार मेरा॥

परदे-परदेमें गालियाँ देकर।
मुझसे वोह पूछते हैं "क्या समझे?"

संगदिल

असर देहलवी—अगर ऐसा ही अब सताइयेगा।
ख़ैर जीता मुझे न पाइयेगा॥

ताबाँ— सबब जो मेरी शहादतका[6] यारसे पूछा।
कहा कि—"अब तो उसे गाड़ दो, हुआ सो हुआ॥"

---

[1]क्रोध; [2]प्रेयसीकी गालियाँ; [3]क्लान्त हृदयपर;
[4]बोझल; [5]साथी; [6]बलिदानका, क़त्ल होनेका।

हसरत लखनवी—
कल किसीने जो कहा "मरता है आशिक तेरा"।
हँसके ग़ैरोंकी तरफ कहने लगा—"और सुना?"

मोमिन— ख्वाहिशे-मर्ग[1] हो, इतना न सताना, वरना।
दिलमें फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ[2] होगा॥

दाग़— हो गया ईद उनको मेरा रोग।
कहकहे उड़ रहे हैं मातममें॥

ज़ालिम

दर्द— ज़ालिम जफ़ा[3] जो चाहे सो कर मुझपै तू वले[4]—
पछतावे फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं॥

दाग़— कहते हैं वोह "जलायेंगे हम तुझको हश्रतक[5]।
दुश्मनको क़ब्र तेरे बराबर बनायेंगे॥"

ग़ुबार-आलूदा[6] है पाये-हिनाई[7]।
मिटाकर आये हो मदफ़न[8] किसीका!

हरजाई

मोमिन— बेपरदा ग़ैरसे न हुआ होगा शब[9] कि सुबह।
आंखोमें शर्म थी न नज़रमें हिजाब[10] था॥

ग़ैरके हमराह[11] वोह आता है मैं हैरान हूँ।
किसके इस्तकबालको[12] जी मेरा तनसे जाय है?

---

[1]मृत्युकी अभिलाषा; [2]इच्छा, [3]अत्याचार, [4]लेकिन; [5]प्रलयतक; [6]धूलसे भरा हुआ; [7]मेंहदीसे रचा हुआ पांव; [8]क़ब्र; [9]रातको [10]लाज [11]साथ-साथ; [12]स्वागतको।

अफ़सोस— कुछ बात मुझसे कर नहीं सकते, हज़ार हैफ़[1]!
मुद्दतमें तुम मिले भी तो ग़ैरोंके घर मिले!!

जुरअत— इस ढबसे किया कीजे मुलाक़ात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और!

नासिख़— हुजूम रखते हैं जाँबाज़ यूँ तेरे आगे।
जुआरियोंका दिवालीपै जैसे जमघट हो॥
जलाओ ग़ैरोंको मुझसे जो गरमियाँ करके।
तुम्हारे कूचेमें तैयार एक मरघट हो॥

दाग़— अपने दीवानोंको देखा, तो कहा घबराकर—
"यह नई वज़अ़की किस मुल्कसे खल्क़त[2] आई?"

अनवर— न हम समझे न आप आये कहींसे।
पसीना पूछिए अपनी जबींसे[3]॥

अमीर मीनाई—
नामे[4] वोह बारी-बारी उश्शाकके[5] पढ़ेंगे।
उजलतमें[6] कुछ न होगा, नम्बर लगे हुए हैं॥
है हुक्मे-यार कोई मेरी तरफ़ न देखे।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं॥

दाग़— आज क्या है जो निकलवाये गये घरसे रकीब[7]?
और दरबानोंके फिकवा दिये बिस्तर बाहर?

क़ातिल

हसन— किया क़त्ल और जान बख़्शी भी की।
'हसन' उसने एहसाँ दुबारा किया॥

---

[1]अफसोस; [2]जनता; [3]मस्तकसे; [4]पत्र; [5]प्रेमियोंके; [6]शीघ्रतामें; [7]प्रतिद्वंद्वी।

मुसहफी— खींचकर तेग यार आया है।
इस घड़ी सर झुका दिये ही बने॥

नासिख— दोस्तो! जल्दी खबर लेना, कहीं 'नासिख' न हो।
कत्ल आज उसकी गलीमें एक बेचारा हुआ॥

जौक— कहे है खंजरे-कातिलसे यह गुलू मेरा—
"कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा॥"

•

अमीर मीनाई—
पछता रहे हैं खून मेरा करके क्यों हुजूर!
अब इसपै खाक डालिए, जो कुछ हुआ-हुआ॥

दाग— जिबह[1] करते ही मुझे कातिलने धोये अपने हाथ।
और खूं-आलूदा[2] खंजर गैरके घर रख दिया॥
अपने बिस्मिलका सर है जानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं!
मेरे मजारको तोदह[3] किया है तीरोंसे।
बहाना ये है कि रोजन[4] किये हवाके लिए॥
मेरे कत्लके रोज मेला लगेगा।
यह जल्सा वोह इक धूम-धामी करेंगे॥
चुटकोमें उनकी तीर निगाहोंमें उनके कहर[5]।
क्या जाने कितनी देर हमारी कजामें[6] है?
या इलाही खैर हो, बैठे हैं वोह यूं बज्ममें।
तेग[7] रक्खी है बराबर और खंजर सामने॥

---

[1]कत्ल; [2]रक्त रंजित, [3]छलनी, [4]सूराख; [5]क्रोध, [6]मौतमें फिक्रमें, [7]तलवार।

जल्लाद

मोमिन—
दावा-ए-तकलीफ़से[1] जल्लादने।
रोज़े-जज़ा क़त्ल फिर अपना किया॥

दग़ाबाज

दाग़—
लड़ती जाती है ग़ैरसे भी आँख।
मुझसे भी बात करते जाते हैं॥

रियाज़ ख़ैराबादी—
नज़अमें[2] यारसे पैमाने-वफ़ा[3] करते हैं।
उस दग़ाबाज़से हम आज दग़ा करते हैं॥

जालसाज

ज़ौक़—
माल जब उसने बहुत रद्दो-बदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा॥

वादा-फ़रामोश

ग़ालिब—
ता फिर न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

दाग़—
"वफ़ा करेंगे, निबाहेंगे, बात मानेंगे।"
तुम्हें भी याद है कुछ, यह कलाम किसका था?

गज़लमे ऐसे शोख एव हरजाई हबीब (चचल और खण्डिता-नायिका) का तसव्वुर वेश्याकी वजहसे आया। क्योकि उन दिनों तमाश-बीनी (वेश्या-आसक्ति) जीवनका एक अंग और समाजकी एक आवश्यक प्रथा बनी हुई थी। बादशाहो-नवाबो, राजा-महाराजाओंके दरबारोंसे यह वाबस्ता

हबीबका तसव्वुर

---

[1]कष्ट देनेके लिए; [2]जीवनकी अन्तिम घडीमें, [3]नेकी करनेका वायदा।

(सम्वन्धित) होती थी। परम्परासे चले आये इस रिवाजके कारण सद्गुणी, सुशील और आदर्श शासक भी इनका नृत्य देखते थे। यह एक ऐसी ही आवश्यक प्रथा थी, जैसी कि यूरोपमें मद्य-पान और वालडान्सकी प्रथा है।

इन शासकोंका अन्धानुकरण प्रायः सभी रईस, जागीरदार, ज़मींदार करते थे। वेश्याओंपर जो जितना अधिक व्यय करता था, उसकी रईसाना शान उतनी ही अधिक वढती थी। नवाव जुल्फिकारअलीने अगर दो तवाइफें नौकर रखी हुई थी तो ठाकुर रामसिंहका चार तवाइफ रखना लाज़िमी था। न रखे तो फिर मूँछोपर ताव इस शानसे कैसे दिया जा सकता था? जव मनोहर पण्डित अपने लडकेकी शादीमें चार-चार तवाइफें ले गये, तव लाला उल्फत आठसे कम क्या ले जाये? विरादरी क्या कहेगी। सरे-वाज़ार नाक कटानी हो तो चाहे एक भी न ले जाये। महफिल गरम हुई तो सुक्खा परचूनिये और मुशी हलवाई-जैसोने तवाइफकी मुट्ठियाँ रुपयोंसे भर दी। तव लाला मोहनलाल गिन्नियाँ न्योछावर न करें तो महफिलसे सुर्खरू होकर कैसे उठे? और जव लालाओंने गिन्नियाँ देनी शुरु कर दी तो नवाव हैदर और ठाकुर सुजानके लिए अव इसके सिवा और चारा भी क्या है कि तवलचीके तवलेको अशर्फियोंसे भर दें।

यह तमाशवीनी यहाँतक प्रचलित थी कि वहुत-से रईस अपने लडकोंको तवाइफोंके यहाँ तहज़ीव सीखनेके लिए उसी तरह भेजते थे, जैसे कि वर्त्तमानमें यूरोप भेजना आवश्यक समझते हैं। उन दिनों यह आम धारणा थी कि वगैर इस तरहकी सुहवतमें रहे वज्मे-अदवमें वैठनेका सलीका-ओ-तरीका नहीं आ सकता, और जो ऐसी सुहवतोंमें रहकर परवान चढते थे, वे इस रगके कैसे माहिर होते होंगे, आसानीसे अनुमान लगाया जा सकता है।

वह युग ही कुछ ऐसा था कि साधारण-से-साधारण व्यक्तिको भी

लड़केकी शादीमे तवाइफका बुलाना आवश्यक होता था। लडकीवालेकी पहली शर्त ही यह होती थी। न ले जानेपर ख़ातिर-तवाजअमे तो अन्तर पडता ही था, गाँवके शोहदे पत्थर भी फेंकते थे। और जिस शादीमे तवाइफ जाती थी, दो-चार छोकरोको तीरे-नजरसे घायल भी करती थी, और इस तरह यह तमाश-बीनीका रोग घर-घरमें फैला हुआ था। मै स्वय कई ऐसे रईसोको जानता हूँ, जो करोडपति होते हुए इस शौककी बदौलत दो-कौड़ीके हो गये। मैंने एक रईसको ऐसी स्थितिमे मरते देखा है कि दुश्मनपर भी ऐसी बला न आये। यही रईस आलमे-शबाबमे एक महफिलमे बैठे रक्स देख रहे थे। पिता मर चुके थे। करोडो रुपयेकी दौलत हाथ लगी थी, तजुर्बा कुछ था नही, जवानीकी चौखटपर पाँव ही रखा था, कि तवाइफको छेड बैठे। तवाइफ भी रूप, सगीतके अलावा अपने हुनरमे यकताँ थी। वह पहलेसे ही इस वारके लिए तैयार थी, भरी महफिलमे उसने रईसजादेका माँजना झाड दिया। परिणामस्वरूप रईसजादेके मनमे भी बदला लेनेकी भावना उठ खडी हुई कि जैसे भी हो इसे नीचा दिखाना ही चाहिए। मीरासियोसे एकान्तमे पूछा तो उन्होने बताया "हुज़ूर, यह बडी पाकदामन और नमाज-रोजेकी पाबन्द है। नाच-गानेका पेशा तो हुनरकी खिदमत समझकर करती है। नवाबोतकको कोठेपर नही चढने दिया, आप तो है किस खेतकी मूली?" बस फिर क्या था? नये बछेडेको एक हण्टर और लगा। परिणाम इसका यह हुआ कि सारी सम्पत्ति उसके इश्कमे लुटा दी। वेश्यानृत्यकी यह प्रथा इतनी आम थी कि बडे-बडे धार्मिक व्यक्तियोको भी खुशी आदिके अवसरोपर अनिच्छा होते हुए भी वेश्या-नृत्य कराना पडता था। खानकाहो और दरगाहोंके उर्सोपर वर्त्तमानमे भी वेश्याएँ जाती है।

इन तवाइफोमे बहुत-सी शाइराएँ भी होती थी। एक तो हुस्नकी मार ही क्या कम होती है, फिर साँपको भी वज्दमे ला देनेवाला संगीत; फिर शाइराना मज़ाक, उसपर भी तुर्रा यह कि तवाइफाना अन्दाज़,

चोचले, शोखियाँ, तेवर—यह सब घरेलू पत्नीमें कहाँ? वह भोली-भाली अबलाएँ यह सब नाज़ो-अदाएँ कहाँसे लायें? मगर दिलफेंक, कामुक व्यक्तियोंको तो यह सब चाहिएँ। घरमें मयस्सर नहीं तो बाज़ारमें तो है? उनकी बलासे शरीफ़ बीवी आठ-आठ आँसू रोती है तो वे अपनी उमगोंका खून कैसे कर दें? घर तबाह हो रहा है, बच्चे भी उसी कूचेमें खेलना चाह रहे हैं, सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है, तो वे क्या करें? क्या इस चन्दरोज़ा जवानीको यूँ ही गुज़ार दें? नहीं जी, इन हुस्नके परिस्तारोंसे यह हरगिज़ नहीं हो सकेगा।

दिल्लीमें ५-६-वर्ष मुझे एक ऐसे पड़ोसमें रहनेका इत्तफ़ाक हुआ, जिनका जवान लड़का कूचये-हुस्नका दिल-दादा था। घरमें सुशीला रूपवती देवी-जैसी पत्नी, मगर दिल एक तवाइफ़के ज़ुल्फ़े-पेचाँमें फँसा हुआ था। बीवी पूजा-पाठकी पाबन्द, नेक और शरीफ़। भला वह तकल्लुफ़, अन्दाज़, तर्ज़े-गुफ्तगू कहाँसे लाये, जो तवाइफ़ने लोरियाँ सुनते-सुनते सीख लिये थे!

पर्देकी सख्त पाबन्दीने भी तमाशबीनोंको हवा दी। इनकी वजहसे किसी शरीफ़ज़ादीसे दीदाबाज़ी नहीं चल सकती थी। अगर किसी मनचले-का दिल अकस्मात् किसीकी तीरे-नज़रसे घायल हो भी गया तो, उसे बार-बार देखना, पत्र-व्यवहार करना, सन्देश भेजना, इश्क़ जारी रखना बहुत दुष्कर था। इसे हर कौममें मायूब समझा जाता था। लड़कियोंकी तरफ़से तो यह पहल होती ही न थी। लड़कों-द्वारा गुस्ताखी-नादिर हो जाती थी तो उसकी अक्सर मरम्मत कर दी जाती थी। इसलिए ऐसे पुरख़तर कूचये-इश्क़में कोई विरला ही सरफिरा कदम रखता था।

मर-मरके हमने काटी हैं अपनी जवानियाँ

'मीर' के समान इस तरह रो-रोकर जवानी काटनेको भला वे कामुक शाइर कैसे प्रस्तुत हो सकते थे, जिनके यहाँ इश्क़का तात्पर्य ही काम-वासना शान्त करना है।

बुलहविसी और दुआ-ए-सोज़े-इश्क़[1]।
दाग़ खानेको कलेजा चाहिए॥

—अमीर मीनाई

ऐसे शाइर जो न तो सामाजिक बन्धनोंको तोडनेकी शक्ति रखते थे, न पारिवारिक-संघर्षका ख़तरा ले सकते थे और न अपनी काम-वासनाओंपर हावी हो सकते थे, साधारण स्तरके आदमी थे। उनकी पहुँच इन तवाइफोंके यहाँ बा-आसानी हो जाती थी, और इसी तमाशबीनीको यह लोग इश्क समझ लेते थे। यह बेचारे 'मीर'-जैसा दिल फूंकनेको कहाँसे लाते?

रोशन है इस तरह दिले-वीराँमें एक दाग।
उजड़े नगरमें जैसे जले है चराग एक[2]॥

मजबूरन तवाइफ़ोंके सगेदरपर सज्दा करना पड़ता था, इसलिए हबीबका तसव्वुर आम शाइरोंका बाजारी औरत (वेश्या-तवाइफ) हो गया। नामवर तवाइफोंके चाहनेवाले ज्यादा होते थे। उन्हे हर तमाशबीन नवाब और रईस अपनी बनाना चाहता था। मगर वह किसकी होकर रहती थी? मोटे आसामीको चन्द दिन फाँसा-चूसा, और दुत्कार दिया। इन चाहनेवालोंमे परस्पर प्रतियोगिता चलती थी। नाकामयाब

---

[1]विषयलोलुपसे पवित्र प्रेमकी आशा करना व्यर्थ है। पवित्र-प्रेमका साहस वही कर सकता है जो अपने हृदयको दग्ध करनेकी क्षमता रखता हो।

[2]पुराने ज़मानेमे जब किसी नगरको बादशाही अताबकी वजहसे मिसमार कर दिया जाता था, तब उस उजड़े नगरमें रातके वक़्त ऊँचे स्थानपर एक चिराग जला दिया जाता था, ताकि देखनेवाले उससे इबरत ले सकें।

उम्मीदवार अपनेको सच्चा आशिक़ और कामयाब तमाशबीनको अदू समझता था। जो ज्यादा ज़र लुटाता, उसीकी मुहब्बतका तवाइफ दम भरती। उसके सामने दूसरे चाहनेवालेको उपेक्षासे देखना पड़ता या मसलहतन बज्मे-रक्ससे उठवाना पड़ता तो इसे शाइर आशिक़े-सादिककी बेइज्जती समझता! अपने स्वार्थके विपरीत तवाइफका जो भी वर्ताव होता, उसे वह जुल्मो-सितम, जोरो-जफा तसव्वुर करता था और अपने हर प्रयत्नको वफादारी समझता था।

मुझे एक ऐसे ही तमाशबीन शाइरने आप-बीती घटना सुनाई थी कि एक तवाइफ़के यहाँ जब वे रातभर रहनेकी गरज़से सोये हुए थे, तब उसका एक पुराना चाहनेवाला आगया और उन्हे खिसकनेको मजबूर होना पड़ा। बेचारे तवाइफकी बेवफाई और हरजाईपनका शिकवा बहुत ही दुखे हुए दिलसे कर रहे थे और मैं गालिबका यह शेर मन-ही-मनमें पढ़ रहा था—

हमको उनसे वफाकी[1] है उम्मीद !
जो नहीं जानते वफा क्या है!!

बाज़ारी इश्कके अलावा, बेवफा माशूक आदिका तसव्वुर शाइरोंने बादशाही-नवाबी दरबारोंसे भी लिया। वे शाइर जो दरबारोंसे सम्बन्धित होते थे, बादशाहो-नवाबोंको हबीब, उनके मुंह लगे मुसाहबोंको अदू, उनकी उपेक्षाओंको तगाफुल, उनकी चीं-ब-जबींको जौरो-जफा, अपनेको मजलूम-ओ-लाचार आशिक तसव्वुर करते थे और उन वाकयातको गमे-जानाँ बनाकर गजलके लबोलहजेमें बयान करते थे।[2]

---

[1]नेकीकी, [2]गजलकी सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि बातको सीधे न कहकर हुस्नो-इश्क, गुलो-बुलबुल, साग़रो-साकीके माध्यमसे बयान किया जाता है। बकौल ग़ालिब—

हर चन्द हो मुशाहद-ए-हककी गुफ्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर।।

बाजारी इश्क और दरबारी घात-प्रतिघाती शाइरीकी वजहसे १९ वीं शताब्दीतककी शाइरीमें पाक इश्कका जज्बा बहुत कम मिलता है, और जो आटेमें नमकके समान मिलता भी है तो वह इतना घुला-मिला हुआ है कि उसे अलहदा करना बहुत दुश्वार है। खुदा-ए-सुखन 'मीर' को ही लीजिए। कही तो उनके बुलन्द इश्कका यह आलम है कि प्रेयसीके न आनेपर कोई शिकवा-ओ-शिकायत नही करते और अपने हृदयको यूँ सान्त्वना दे लेते है—

जिगरचाकी, नाकामी, दुनिया है आख़िर[1]।
नहीं आये जो 'मीर' कुछ काम होगा॥

उसकी उपेक्षाको अपने ही इश्ककी खामी समझते है—

मुझीको मिलनेका ढब कुछ न आया।
नहीं तक़सीर[2] उस ना-आश्नाकी[3]॥

उन्ही 'मीर' के यहाँ अमरद-परस्तीके (छोकरोंके प्रेम सम्बन्धी) अशआर भी पाये जाते है।

मिर्जा 'गालिब'के यहाँ जहाँ ऐसे पवित्र-प्रेमका तसव्वुर है—

ऐ दिले ना-आकबत-अन्देश! जब्ते-शौक कर।
कौन ला सकता है, ताबे-जल्व-ए-दीदारे-दोस्त[4]॥

---

[1]हृदयको व्यथित करने और असफलतापर खेद करना व्यर्थ है। यह दुनिया है। प्रेयसीको भी दुनियाकी असुविधाओं-परेशानियोने न आने दिया होगा।

'मीर'का पवित्र प्रेम देखिए कि वे प्रेयसीके न आनेपर अन्य शाइरोकी तरह उसकी वादा-फरामोशीका गिला-शिकवा नही करते, अपितु अपने हृदयको उचित सान्त्वना देनेका प्रयास करते है।

[2]अपराध, खता; [3]अपरिचित प्रेयसीकी; [4]ऐ अदूरदर्शी, प्रेमी! अपनी चाहतको वशमें रख। उस सुशीला प्रियतमाके रूपको निहारनेकी सामर्थ्य किसमें है?

फ़रोग़े-शोलये-ख़स यक नफस है।
हविसको पासे-नामूसे-वफा क्या[1]?

वहाँ उनके यहाँ कहीं-कहीं ऐसे हकीर शेर भी नज़र आते हैं—

क्या ख़ूब तुमने ग़ैरको बोसा नहीं दिया!
बस, चुप रहो, हमारे भी मुँहमें ज़बान है॥

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं यह ख़ू[2]।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा[3] किये॥

गजलमें इस तरहके दुरंगे मज़मून पाये जानेकी वजह यही है, कि हर शाइरकी विचार-धारा प्रारम्भसे अन्ततक यकसाँ नहीं रहती। बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जो अपने भावोंको स्थायी रख सकें। कभी वे अपने चारों तरफके वातावरणसे प्रभावित होते हैं, और कभी अपने दिलकी मुख्तलिफ कैफियातसे मुतास्सिर होते हैं। जिसे अपना वतन छोड़ना पड़ा हो, उम्रभर पापड़ बेलने पड़े हों, वह 'मीर' यह न कहता तो और क्या कहता?

आग थे इब्तदा-ए-इश्कमें[4] हम।
अब जो हैं ख़ाक इन्तहा[5] है यह॥

मेरे सलीकेसे मेरी निभी मुहब्बतमें।
तमाम उम्रमें नाकामियोंसे काम लिया॥

और यही 'मीर' जब लखनऊ पहुँच जाते हैं, वहाँ भरण-पोषणकी चिन्ताओंसे तनिक मुक्ति पाते हैं, और लखनऊकी रंगीन फिज़ा एवं चूमा-

---

[1]हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज्ज़तका पास नहीं हो सकता। फरोगे-शोलए-ख़स (घासकी आगका भड़काव) यकनफ़स (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नहीं होता।
[2]आदत; [3]बग़ैर माँगे, [4]प्रेमके प्रारम्भमें; [5]अन्त।

चाटीकी शाइरीके वातावरणमे साँस लेते है तो गो लाख तबीयतपर काबू सही, मुँहका ज़ायका बदलनेको अथवा होलीका भड़ुआ बननेको ऐसे शेर भी कह बैठते है—

मिलो इन दिनों हमसे एक रात जानी।
कहाँ हम कहाँ तुम कहाँ फिर जवानी॥

देहलवी शाइरोका जीवन अक्सर अभावो और दुश्चिन्ताओमें व्यतीत हुआ। जब बादशाह एव रईसोकी हालत तबाह थी, तब उनसे सम्बन्धित शाइरोका तो ज़िक्र ही क्या? बाल-बच्चोके भरण-पोषणकी चिन्ताओ और आकुलताओमे जिनका जीवन व्यतीत हो, उनके कलाममे दुःख, व्यथा, पीड़ा, तड़प, निराशा, असफलता आदिका समावेश स्वाभाविक है।

देहलवी-लखनवी शाइरी

देहलवी शाइरोमे मीर, सोज़, दर्द, ग़ालिब, मोमिन, ज़ौक आदि जितने भी शाइर चमके, वे सब मुग़लिया सल्तनतके ज़वालमें चमके। वे निराशाओ-की गोदमे पले, असफलताओंकी लोरियाँ सुनते-सुनते जवान हुए। मुसी-बते ही जिनका ओढ़ना-बिछौना रही, उनके मुँहसे ऐसी करुणापूर्ण शाइरी न होती तो और किससे होती?

देहलवी शाइरोकी यही करुणापूर्ण स्थिति उर्दू-शाइरीके लिए वरदान साबित हुई। दुःख-दर्द, व्यथा-पीड़ा ही शाइरीके मुख्य अग है। यह न हो तो शाइरी अपाहिज है। सुख शाइरके अन्तस्तलमें दबे हुए विकारोको उभारता है। दुःख शाइरके उच्च भावोको जागृत करता है। सुखान्त दृश्य मनको क्षणभरके लिए स्पर्श करता है। दुखान्त दृश्य हृदयको द्रवित करके रख देता है। सुख अस्थायी और दुःख स्थायी है। सुखकी घड़ियाँ लमहेभरको आती है और चली जाती है, दुःख जब आता है तो मरते-दमतक साथ नही छोड़ता। दुःख-व्यथामे वह पीडा और कसक होती है कि शाइर उनके व्यक्त करनेको मजबूर होता है। सुखमे यह सामर्थ्य कहाँ कि वह शाइरको कहनेके लिए लाचार कर सके।

मेरे रोनेका जिसमें किस्सा है।
उम्रका बहतरीन हिस्सा है॥
—जोश मलीहाबादी

हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे-ग़म है॥
—मुहम्मदअलीख़ाँ असर

इससे बढ़कर दोस्त कोई दूसरा होता नहीं।
सब जुदा हो जायें, लेकिन ग़म जुदा होता नहीं॥
—जिगर मुरादाबादी

लखनवी शाइरोंने निराशाओं एवं असफलताओंका कभी मुंह नहीं देखा। जिन दिनों बादशाहत मिट रही थी, दिल्ली उजड रही थी, उन्हीं दिनों अवधकी नवाबी पूरे आबो-ताबके[1] साथ चमक रही थी। लखनऊके हर गली-कूचेमें लक्ष्मी थिरक रही थी। रक़्स-ओ-शराब,[2] साक़ी-ओ-मुतरिब[3] सर्वसाधारणके लिए सुलभ थे। भोग-विलास लखनवी जीवनका लक्ष्य था। दिनमें कहीं बटेरोंकी पालियाँ बदी जाती थीं, तो कहीं तीतरोंकी कुश्तियाँ होती थीं। कहीं मुर्गोंकी लडाइयाँ होती थीं तो कहीं कनकौओंके पेच होते थे। रातको कहीं कोकिलकंठी तवायफोंके नग्मे[4] गूँजते थे, तो कहीं मुशाइरोंकी वाह-वासे कान पडी आवाज़ सुनाई न देती थी। कहीं रक़्सका वह आलम होता था कि महफिल-की-महफिल झूमती होती थी। शराब पी ही नहीं जाती थी, बहाई भी जाती थी। लखनवियोंकी हर ज़रूरियात संकेत मात्रमें पूर्ण होती थीं। लखनऊका शाइर, ऐय्याश, शराबी और तमाशबीन था। छेड़-छाड़, चुहल, मस्ती, उसका रात-दिनका मशग़ला[5] था।

देहलवी शाइरोंने आपदाओंमें जवानियाँ गुज़ारी थीं। इसलिए उनकी शाइरीमें रंजो-अलमकी[6] टीस मिलती है। लखनवी शाइरोंने भोग-

---

[1]चमक-दमकके; [2]नृत्य-शराब; [3]गायिका; [4]संगीत; [5]कार्य, चर्या, शौक़; [6]दुःख-व्यथाकी।

विलासमे आँखें खोली थी, इसलिए उनकी शाइरीमें रगीनियाँ रक़्स[1] करती नज़र आती हैं।

१७८० ई० पूर्व गज़लमे हबीबका[2] तसव्वुर[3] स्पष्ट नही था। वह स्त्री है या पुरुष, यह निश्चय नही किया जा सकता था। क्योकि हबीब चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसके लिए, सज्ञा, विशेषण, क्रिया, सम्बोधन आदि सब स्त्री लिंग न होकर पुल्लिंग व्यवहृत होते थे। उदाहरणस्वरूप निम्न चार मिसरोको लीजिए—

प्रेम-पात्र पुरुष या स्त्री

है खबर गर्म उनके आनेकी।

जमा करते हो क्यों रकीबोको?

तुझीको यहाँ जलवा-फ़रमा न देखा।

वोह मिला भी कभी तनहा तो मै तनहा न हुआ।

इन मिसरोंसे स्पष्ट नही होता कि ये स्त्री या पुरुष किस हबीबको तसव्वुर करके लिखे गये हैं। हबीबका अर्थ 'प्यारा' है। यानी जिसे प्यार किया जाय, वह हबीब है। पुरुष किसी युवतीको प्यार करता है तो वह युवती उसकी हबीब हुई और यदि युवती पुरुषको प्यार करती है तो पुरुष युवतीका हबीब हुआ। यदि दोनो एक-दूसरेको चाहते—प्यार करते हैं तो दोनो एक-दूसरेके हबीब और आशिक हुए। हकीकी शाइरोका खुदा हबीब होता है। अत. गजलके अशआर स्त्री-पुरुष दोनो ही समान रूपसे व्यवहारमे लाते थे, और शाइर स्त्री हो या पुरुष अपनेको आशिक और अपने प्यारेको हबीब समझते थे। दोनो ही अपने लिए तथा हबीबके

[1]थिरकती, नाचती; [2]माशूकका; [3]उल्लेख, चिन्तन।

लिए पुल्लिंग शब्दोंका व्यवहार करते थे। नवाब आसफुद्दौला अपने हबीबके तसव्वुरमें इस तरह लिखते थे—

कोई बात तो हमारी भी मान, अब खुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तल्ख़[1]?

तो हिजाब बेगम भी यूं हमकलाम होती थी—

रक़ीबोंकी[2] तो शबोरोज़[3] सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी माहलक़ा[4]! सुनो तो सही॥
नहीं यह खूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मैं कहता हूँ, क्या सुनो-तो सही॥

शाइरीका यह ढंग तो बहुत अच्छा था कि हबीबका स्पष्ट संकेत न हो और स्त्री-पुरुष दोनों ही समानरूपसे लुत्फ़-अन्दोज़[5] हो सकें। मगर अच्छी चीज़में भी बुरे पहलू उसी तरह निकल आते हैं, जिस तरह गुलाबमें काँटे। इस शाइरीमें बाज़ मनचलोंने छोकरोंको भी हबीब तसव्वुर करना शुरू कर दिया और बाज़ने उनके नाम अंकित करके, सब्ज़-ए-ख़त (ठोडीके बाल) टोपी, दस्तार आदिका उल्लेख करके स्पष्टतः छोकरेको हबीबका रूप दे दिया।

ग़ज़लमें सबसे पहले 'हसरत' ने[6] नवाब आसफुद्दौलाके शासन-काल (१७७२-१७९७ ई०) में स्पष्टतः स्त्रीको हबीबका दर्जा दिया। तबसे लखनवी शाइरीमें स्त्रियोचित बातोंका समावेश होने लगा। लेकिन परम्पराके अनुसार क्रिया, विशेषण, सम्बोधन आदि पुल्लिंग ही इस्तेमाल किये गये। यहाँ हम उदाहरण-स्वरूप प्रोफ़ेसर अन्दलीब शादानी-द्वारा संकलित जून १९५१ के निगारमेंसे ४१ अशआर सधन्यवाद दे रहे हैं—

---

[1]कड़वा; [2]प्रतिद्वंद्वियोंको (सौतोंको); [3]दिन-रात; [4]चन्द्रमुखी; [5]आनन्दित; [6]'हसरत देहलीके रहनेवाले थे, मगर लखनऊ आकर रहने लगे थे और वहीं उन्होंने इस रंगका आविष्कार किया था।

परदानशीं हबीब

क़रार— शायद कि कोई परदानशीं झाँक रहा है।
आज आई नज़र रोज़ने-दीवारकी[1] आँखें॥

आग़ा— नज़र पड़ी है तेरी जबसे पटकी आड़में आँख।
लगी ही रहती है, ऐ बुत! मेरी किवाड़में आँख॥

गरमाँ— हम आये तो चिलमनमें[2] लगाये गुले-नरगिस[3]।
दरपरदा दिखाता है वोह रश्के-चमन[4] आँखें॥

नज्द— लिल्लाह झरोकोंसे दिखा जाइए सूरत।
मुश्ताक़[5] है अब जलवए-दीदारकी[6] आँखें॥

कैफ़— निगाहे-आशिक़े-मुश्ताक[7] पहुँच जाती है।
लाख घूँघटको करे यार हिसारे-आरिज़[8]॥

मुहसन— हमसे कन्धा जो बदल लें तेरी डोलीके कहार।
अर्शे-आलासे[9] भी ऊँचा हो हमारा शाना[10]॥

यह परदा, चिलमन और किवाड़ोकी ओटमे ताक-झाँक, यह रो दीवारो-दर और झरोखोंसे नज़र-बाज़ियाँ और यह डोलीकी सवारी, परव हबीबका स्पष्ट संकेत करती है। इस तरहके हया परवर[11] हबीबके तसव्वु बजाय लखनवी शाइरीमें बाज़ारी-हबीबका उल्लेख बहुत अधिक मिलत

बाज़ारी-हबीब

सुहबत— हो गया हमको जुनूँ[12] टुकड़े गरेबाँको किया।
रख लिया उसने दमे-रक़्स[14] जो दामा[15] सरपै॥

---

[1]दीवारके झरोखोमे-से आँखे दिखाई दी; [2]तीलियोंके परदेमें; [3]नरगि फूल; [4]फूलोकी ईर्ष्या योग्य; [5]उत्सुक; [6]चमत्कार देखनेवालेकी,; [7]उ प्रेमीकी दृष्टि; [8]कपोलको घूंघट रूपी क़िलेमें छिपाना; [9]आकाशसे; [10]कं [11]लज्जाशील प्रेयसीके; [12]चिन्तनके; [13]उन्माद; [14]नाचते समय; [15]दुपट्टेका प

हुस्साम— बे-हिजाबीमें[1] भी परदा ही रहा आशिकसे।
रक़्समें[2] भी नज़र आये, तहे-दामां-आरिज़[3]॥

फ़रोग़— क्या ख़ुशनुमा बनाये हैं हक़ने तुम्हारे हाथ।
करते ब-वक़्ते-रक़्स हैं क्या-क्या इशारे हाथ॥

तासीर— हाथोंको नाचमें जो मुकर्रर[4] उठाइए।
दरियाए-हुस्न[5] आपका बढ़ जाये चार हाथ॥

रकीब— वक़्ते-रक़्स[6] आगे बढ़ा, रखके वोह जब हाथ पै हाथ।
ग़श हुए, लोट गये, मारके सब हाथपै हाथ॥

शहीद— दस्ते-रंगीं[7] जब कि दिखलाई दिया हंगामे-रक़्स।
शमए-महफ़िल जल गई, उस ख़ुश-अदाके[8] हाथसे॥

सैर— कंगन चमकते हैं जो दमे-रक़्स हाथोंके।
हैं अहले-बज़्मके[9] लिए बिजली कलाइयां॥

वज़ीर— चल रहे हैं पांवके बिछवे अजब हंगामे-रक़्स।
करती हैं ख़ूंरेज़ियां[10] हर-हर क़दमपर उंगलियां॥

मुज़तर— वोह हाथ उठा-उठाके यह कहते हैं रक़्समें।
"मुजरा करें जो अब कोई हमसे बचाये दिल॥"

महर— नाचका हुस्न बढ़ गया दूना।
लचके तब ऐ हसीं कमर-कूले॥

---

[1]बेपर्दगीमें; [2]नाचनेमें; [3]घूंघटके अन्दर कपोल; [4]दुबारा, पुन.; [5]सौन्दर्यका दरिया; [6]नाचते समय; [7]मेंहदी रचा हाथ; [8]मोहक अदा-वालेके; [9]महफ़िलवालोंके; [10]रक्तपात।

2045

सरूर— करते हैं सहर[1] रक़समें उस गुलबदनके पाँव।
क्या-क्या समाँ दिखाते हैं, ताऊस[2] बनके पाँव॥

सालक— इस अदासे बज़्ममें रक़्साँ हुआ वोह रश्के-माह[3]।
बन गया घुँघरू हर इक चश्मे-तमाशा पाँवमें॥

नासिख़— रक़समें आती नहीं यह तेरे घुँघरूकी सदा[4]।
करते हैं आसूदगाने-ख़ाक[5] शेवन[6] ज़ेरे-पा[7]॥

सग़ीर— सियाही पुतलियोंकी यह भी इक परदा है ज़ाहिरका।
फिरा करती है तेरी सुरमई पिशवाज़[8] आँखोंमें॥

नासिख़— आवाज़ यह होती नहीं ज़िनहार[9] गलेमें।
समझो न रगें, साज़के हैं तार गलेमें॥

मोहसन— बेहाल कर दिया मुझे गानेने आपके।
लै है बलाकी, क़हरका खटका गलेमें है॥

लखनऊके इस दौरकी सोसायटीके बाज पहलुओंपर निम्नलिखित अशआरसे रोशनी पड़ती है—

बर्क़— नीचे हम बैठे हैं कोठेपै अलग सुहबत है।
अब तो होते हैं सितम ऐ गुले-ख़न्दाँ[10] सरपर॥

ख़ल्क़— फिर हाथमें है हाथ सरे-चौक ग़ैरका।
निकले हैं रफ़्ता-रफ़्ता फिर उस सीमतनके[11] पाँव।

---

[1]जादू; [2]मोर; [3]जिसके सौन्दर्यके आगे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे; [4]आवाज़; [5]मिट्टीमें मिले हुए मुर्दे; [6]नाले; [7]पाँवके नीचे, [8]नाचनेकी पोशाक; [9]हरगिज़; [10]फूलोंकी तरह हँसनेवाले; [11]चान्दी-जैसी गोरीके।

अमानत— ग़ैरोंके नशे बज़्ममें[1] क्या-क्या हिरन हुए।
हाय उसने जब रखा, मेरे मस्ताना दोशपर[2]॥

नासिख़— लोगोंमें होंट चूम लिये हमने, क्या किया?
गुस्सेसे क्यों न दांत तले वोह दबाये होंट?

मोहसन— मांगा जो मैंने बोसये-लब[1] बज़्मे-ग़ैरमें[2]।
त्यौरी चढ़ाई दांतसे उसने दबाके होंट॥

सहर— अपनी जगहपै देख सकेंगे न ग़ैरको।
जाया करेंगे और ही रस्तेसे सैरको।

धीरे-धीरे यही स्त्रियो सम्बन्धी शाइरी ज़नानी शाइरी बनती गई, बजाय इसके कि शाइरीमे स्त्रियोचित उच्च भावनाओंका समावेश करते, उनके वास्तविक पवित्र-प्रेमका उल्लेख करते। स्त्री जिसकी एक बार हो जाती है, वह चाहे जैसा भी गया-बीता हो, उसे उम्रभर निभाती है। अपाहिज, रोगी, निखट्टू, अनाचारी पतिको भी ईश्वर-तुल्य समझती है और उसीकी सेवा और यादमे समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत लखनवी शाइरोंने उसके कुत्सित रूपका वर्णन किया। उन्हे नारीके अन्दर माँ, बहन, पत्नी, प्रियतमाकी उज्ज्वल एवं महान आत्माओंके दर्शन नहीं हुए। उन्होंने वेश्याके उस घिनौने रूपको देखा, जिसे उसने शृंगारिक वस्तुओंमें छिपा रक्खा था। अत. लखनवी शाइरोंके यहाँ—ज़ुल्फ़, काकुल, जूड़ा, चोटी, कंघी, शीशा, सुर्मा, मिस्सी, ग़ाज़ा (पाउडर), मेंहदी, फूल, सिन्दूर, पान, इत्र—आदि शृंगारिक वस्तुओंके अशआर बहुत अधिक तादादमे मिलते हैं। यहाँ नमूनेके तौरपर हर चीज़का सिर्फ़ एक-एक शेर दिया जा रहा है।

---

[1]महफ़िलमें, [2]पत्थेपर; [1]होंटोंका चुम्बन; [2]दूसरोंके जल्सेमे।

साज-सज्जा

मोहसन— हफ़्ते भरमें उन्हें फ़ुरसत नहीं इन सातोंसे—
पान, इत्र, आइना, मँहदी, मिस्सी, सुर्मा, शाना[1]॥

सहर— हथेली सफ़ाईसे आईना है।
मलो मिस्सी देखो घरी हाथमें॥

अली— कहकशाँ[2] दिखलाती है जलवा शबे-तारीकमें[3]।
ख़त नहीं सेंदूरका ऐ जानेजाँ! बाला-ए-सर॥

बहर— ग़ाज़ेसे[4] लालाज़ारे-शफ़क़को[5] ख़िजल[6] किया।
अफ़्शाँ[7] चुनी तो चाँदनीका खेत कट गया॥

जेवरात

उन दिनोंके प्रचलित सभी ज़ेवरातपर लखनवी शाइरोंने तबा आज़-माई[8] की है। उन ज़ेवरातोकी सूची और अशआरको देखकर यह मालूम होता है कि हम शेर नही पढ रहे है, सर्राफा-बाज़ारमें बैठे हुए है। बतौर नमूना चन्द अशआर मुलाहिज़ा हों—

नासिख़— चम्पाके फूलमें है न गुलकी कलीमें है।
जैसी तेरे गलेकी है, चम्पाकलीमें बू॥

करते है आलमको जिसके पाँवके बिछवे शहीद।
उस सितमगरको बला लेती है खंजर हाथमें॥

अजी यह अर्श-मुअल्लाके[9] गोशवारेका[10]।
गुहर[11] कहाँसे तुम्हारे बुलाकमें आया?

---

[1]कंघा; [2]बिजली, [3]अधेरी रातमे; [4]पाउडरसे; [5]सन्ध्याकालीन लालिमाको; [6]शर्मिन्दा; [7]गोटे वगैरहके कटे हुए बारीक टुकडे जो दुलहनोंके मुँहपर चुनते है; [8]कोशिश, [9]आकाशमे रहनेवालोंके; [10]कानका; [11]मोती।

बहर— पहने जो मोतियोंके करनफूल यारने।
तारोंपै ओस पड़ गई, ख़ोशा[1] ठिठुर गया॥

लख़्ते-जिगरसे मेरे कौमतमें बढ़ चले थे।
झूठे पड़े नगीने सब उसके नौरतनमें॥

लिबास

रंग-बिरंगे दुपट्टे, ओढने, पायजामे, नेफ़े, कुर्ती, अँगिया, आदिके चन्द नमूने—

सहर— मिसले-कमर लचकती हैं दोनो कलाइयाँ।
भारी हैं पाँयचे दमे-रफ़्तार[2] हाथमें॥

इश्की— ग़ज़ब नैरंगे-अक्स[3] आरिज़े-रंगीने[4] दिखलाया।
सुनहरा था दुपट्टा, हो गया गुलनार काँधेपर॥

बहर— महरमके[5] सितारे टूटते हैं।
पिस्ताँके[6] अनार छूटते हैं॥

नासर— सुर्ख़ पाजामा है, गोटा हर कलीमें है लगा।
फूलकी छड़ियाँ हैं उस रश्के-चमनकी[7] पिण्डलियाँ॥

जरी— मूबाफ़े-ज़र[8] लपेट दिया मुँहके अक्सने।
गरदनपै आके बन गई गोटेका हार ज़ुल्फ़॥

रूप

हबीबके जिस्मके हर हिस्से—सीना, छातियाँ, नाभि, पेट, कमर,

---

[1]अन्नकी बाली, गुच्छा; [2]चलते समय; [3]परछाईंकी रंगीनता; [4]रंगीन कपोलोंने; [5]चोलीके; [6]कुचोंके; [7]बग़ीचेके लिए भी ईर्ष्यायोग्य; [8]वह फ़ीता जो औरतें चोटीमें लपेटती हैं।

नितम्ब, रान, पिंडलीका उल्लेख लखनवी शाइरोंने बहुत ही अश्लील और कुरुचिपूर्ण ढंगसे किया है। इनमें सिर्फ नौजवान शाइर ही नहीं, बल्कि उस्ताद और बुजुर्ग शाइर भी हैं। सभ्यता इजाज़त नहीं देती कि उदाहरणस्वरूप इस तरहका एक शेर भी पेश किया जाय। इन अशआरको पढ़कर ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई जंगली औरत ज़ेवर आदिसे सजकर बाजारमें नंगी खड़ी हो।

उक्त ज़नानी शाइरीके अतिरिक्त लखनऊमें खारिजी शाइरीको बहुत फरोग मिला। इसके बानी-मुबानी 'नासिख़' हुए हैं। हृदयगत भावोंकी

दाखिली-ख़ारिजी शाइरी

शाइरीको दाख़िली शाइरी कहते हैं। दाख़िली शाइरी अकृत्रिम और स्वाभाविक होती है। इसे सुनकर हृदय-तंत्रीके तार झंकृत हो उठते हैं और उनसे 'आह' की ध्वनि निकलती है। दाखिली शाइरी देहलवी स्कूलकी देन है, इसलिए इसे देहलवी शाइरी भी कहते हैं। इसके नमूने यहाँ देनेकी आवश्यकता नहीं। मीर, दर्द गालिब, मोमिन आदि सैकड़ों देहलवी शाइरोंके कलाममें ऐसे नमूने देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे भागके कई लखनवी शाइरोंके यहाँ इस तरहका कलाम काफी मिलेगा। क्योंकि वर्तमान युगमें खारिजी रंगमें शाइरी करना प्रायः बन्द हो गया है, और वर्तमानमें प्राय. सभी लखनवी शाइर दाख़िली रंगमें कहते हैं।[1]

खारिजी शाइरी मस्तिष्ककी शाइरी है, दिमागसे सोच-सोचकर अस्वाभाविक और कृत्रिम कल्पनाओंको शब्दाडम्बरों-द्वारा सजाकर

---

[1]प्राचीन देहलवी शाइरोंका कलाम शेरो-सुखन प्रथम भागमें ३००-४०० पृष्ठोंमें बहुत अधिक संख्यामें दिया गया है। इसके अतिरिक्त तीसरा भाग केवल देहलवी स्कूलके शाइरोंका है, जिसमें हज़ारों शेर दाख़िली रंगके हैं।

पेश करना खारिजी शाइरी है। इसे सुनकर दिल तो वज्दमें (तन्मयतामें) नही आता, हाँ, इसकी जाहिरा शानो-शौकत, टीप-टाप, नफासत और लिबासको देखकर मस्तिष्क अवश्य झूम उठता है। खारिजी शाइरी लखनऊ स्कूलकी उपज है। इसलिए इसे लखनवी शाइरी भी कहते है।

दाखिली रग, शाइरीका आत्मा है तो खारिजी रग उसका कलेवर। हकीकतमें शाइरीके लिए दोनो ही जरूरी है। आत्मा कितना ही पवित्र और उन्नत हो, सडे-गले कलेवरमें घिनावना ही मालूम देगा। इसी तरह बगैर प्राणका कलेवर कितना ही सजाया जाय दुर्गन्धित हो उठेगा।[1]

खारिजी रगके चन्द नमूने

नासिख—

रूठे हुए थे आप कई दिनसे, मनगये।
बिगडे हुए तमाम मेरे काम बन गये॥

हँसते हो सुनके मेरा हाल कहाँतक देखूँ?
वे रुलाये यह कहीं, मर्सियाख्वाँ[2] उठता है?

मुझको बेगाना[3] समझे है, जालिम!
राह चलतेको आश्ना[4] जाने!!

अव्वल तो न कासिदको[5] रहे-कूए-सनम[6] याद।
पहुँचे तो फरामोश[7] हो पैगाम[8] हमारा॥

तमाम उम्र यूँ ही हो गई बसर अपनी।
शबे-फिराक[9] गई, रोजे-इन्तजार[10] आया॥

---

[1]खारिजी-दाखिली शाइरीका उल्लेख यहाँ हम जानबूझकर सक्षिप्तमें कर रहे है, क्योंकि प्रथम भागमें पृ० २४८-२७०मे विस्तारसे दे चुके है। [2]मर्सिया कहनेवाला, [3]गैर, पराया; [4]मित्र, परिचित; [5]पत्र-वाहकको; [6]प्रेयसीके स्थानका मार्ग, [7]भुलाया जावे; [8]सदेश, [9]विरह रात्रि; [10]प्रतीक्षा-दिवस।

भूलकर ओ चाँदके टुकड़े! इधर आ जा कभी।
मेरे वीरानेमें भी हो जाये दमभर चाँदनी॥

न सज्द-ए-दरेजानाँसे[1] सर उठाऊँगा।
यह वोह नमाज़ है जिसका कभी सलाम नहीं॥

हश्रतक जीमें है, बेहोश रहूँ मै साकी!
काश मै[2] भरदे मेरे उम्रके पैमानेमें[3]॥

'नासिख़'! शराब पी, शबे-तारीक[4] हो तो हो।
रोशन है, सहने-बाग़में हरसू[5] चरागे-गुल[6]॥

हर तरफ़ मसरूफ़[7] ज़ाहिद[8] है, नमाज़े-सुबहमे।
गरदने-मीनाको भी लाज़िम है अब खम कीजिए॥

एक हफ़्तेसे बहम सातो मयस्सर है मुझे।
दश्त, दरिया, सब्ज़ा, साकी, शीशा, सागर, चाँदनी॥

आती-जाती है जा-बजा बदली।
साकिया जल्द आ, हवा बदली॥

खलील—

सुन लीजिए ज़रा मेरे अश्कोका[9] माजरा[10]।
इन मोतियोको भी कभी कानोमे डालिए॥

सबा—

उनकी रफ्तारसे दिलका अजब अहवाल हुआ।
रुँध गया, पिस गया, मिट्टी हुआ पामाल हुआ॥

---

[1]प्रेयसीके द्वारपर झुका हुआ मस्तक; [2]शराब; [3]प्यालेमें; [4]अँधेरी-रात; [5]चारो तरफ; [6]फूल रूपी दीपक; [7]व्यस्त; [8]परहेज़गार; [9]आँसुओं-का; [10]हाल।

रिन्द—

बाकी है अभी असर जुनूँका[1]।
सौदा[2] तो गया है, झक[3] रही है॥
लैला मजनूँका रटती है नाम।
दीवानी हुई है, बक रही है॥

सबा—

बेतकल्लुफ उससे होकर क्यों न हो महजूज़[4] हम।
तोड़कर परहेज़ होता है बहुत बीमार खुश॥

अमीर मीनाई—

सैयाद! मैं तो तायरे-रफ़अतपसन्द[5] हूँ।
लटका मेरे कफ़सको तू शाखे-हिलालसे[6]॥
ग़ैरोंको फाड़ खाय सगे-यार[7] तो कहूँ।
"ऐ शेर, वाह, तू ही तो शेरों-का-शेर है॥"

रंगीन—

पहुँचे हम जिस शहरमें पूछा यह अहले-शहरसे—
"खूबरुओंकी[8] यहाँ बिकती है, तसवीरें कहाँ?"

पढ़ाई थी पट्टी उन्हें ग़ैरने।
मेरा ख़त वह क्यों नामावर[9] देखते?

बर्छीका काम कर गई अर्ज़ी रकीबको[10]।
तेरी नज़रसे मेरे जिगरमें गुज़र गई॥

---

[1]उन्मादका; [2]पागलपन; [3]सनक, वहम; [4]ख़ुश; [5]ऊँचा उड़नेवाला पक्षी; [6]दोजके चाँदसे; [7]प्रेयसीका कुत्ता; [8]सुन्दरियोंकी; [9]पत्र-वाहक; [10]शत्रुको।

करता हूँ याद शामसे अबरु-ए-यारको[1]।
खंजरसे काटता हूँ, शबे-इन्तज़ारको[2]॥

उठाते हो तो फिर सबको उठा दो।
यह चिलमन[3] किसलिए दरपर[4] पडी है?

दरपर पडे हुओंपै ग़ज़बका अताब[5] है।
परदे भी आज बाँधके लटकाये जाते हैं॥

उछाला गेसुओंने[6] नाम कैसा पाके आरिज़को[7]।
जमाने-हुस्नपर छाये हुए हो, आस्माँ होकर॥

तेरी पलकोसे थीं वा-बस्ता उम्मीदें दिलकी।
आँख क्या तेरी फिरी, फिर गई भाड-दिलमें॥

ले उड़ी घूंघटके अन्दरसे निगाहे-मस्तहोश।
आज साक़ीने पिलाई है हमें छानी हुई॥

आँखमें डोरोंका आलम देखिए।
यह नया आहू[8] असीरे-दाम[9] है॥

नहीं कटती तो कहता है सितमगर—
"यह गरदन है कि फ़ुरक़तकी[10] घड़ी है॥"

जलाल—

कहकहा मारे अदू[11] इसकी नहीं ताब,[12] ऐ यार!
रोक लेते हम अगर तोपका गोला होता॥

देखे जो आईना भी शबाब[13] उस जमीलका[14]।
दिलमें चुभे उभार मुहासोंकी कीलका॥

---

[1]प्रेयसीकी भवोंको; [2]रात्रिकी प्रतीक्षाको; [3]पर्दा, चिक; [4]द्वारपर; [5]क्रोध; [6]बालोंकी लटोंने; [7]कपोलोंको; [8]हिरन; [9]जालमें फँसा हुआ; [10]विरहकी; [11]शत्रु; [12]बरदाश्त, [13]यौवन; [14]सुन्दरीका।

ग़ैरसे सोना-ब़सीना हुए, तुम।
छातीपर साँप यहाँ लोट गया॥

सब उसके गेसुओंकी शिकनमें[1] असीर हैं[2]।
हम माँगकी लकीरके ऐ दिल फ़कीर हैं॥

ऐसे ख़ूँख़्वार हैं उस तुर्कके[3] मुए मिज़गाँ[4]।
कि तसव्वुरसे[5] यहाँ रोएँ खड़े होते हैं॥

यारका बोसये-लबे-शीरीं[6]।
अब तो बाज़ारकी मिठाई है॥

समझे यह हम जो रातको तारे चमक गये।
वक़्ते-नियहपर[7] अपने फ़लक[8] ख़न्दाज़न[9] हुआ॥

दिलको लगाके कूचये-गेसूमें[10] ले चला।
आहू-ए-चश्मेयार[11] तिलस्मी हिरन हुआ॥

पीरीने[12] आरज़ूए[13]-जवानी जो हमने की।
ऐसा दिया जवाब कि दन्दाँशिकन[14] हुआ॥

नासिख़—

मिल गया ख़ाकमें पिस-पिसके हसीनोंपर मैं।
क़ब्रपर बोयें कोई चीज़ हिना[15] पैदा हो॥

---

[1]बल, सिकुड़न, [2]क़ैदी, [3]माशूक़के; [4]पलकोंके बाल, [5]ख़याल आते ही, [6]मधुर ओठोंका चुम्बन; [7]दुर्भाग्यपर; [8]आसमान; [9]मुसकराया; [10]बालोंके कूचेमें, [11]प्रेयसीके हिरन रूपी नेत्र, [12]वृद्धावस्थाने; [13]इच्छा; [14]दाँत टूट गया, [15]मेहदी।

मुनीर—

नाक़ये-लैलाकी[1] क्या सहराये-मजनूँमें[2] बिसात।
अजदहे-वशहतके[3] मुँहमें ऊँट जीरा हो गया॥

शादी है दुख़्ते-रिज़्से[4] किसी दीं-परस्तकी[5]।
तौबाके[6] दरपै बजती है घण्टी शिकस्तकी[7]॥

शरफ़—

रमाके धूनी जो बैठा हूँ माँगपर उसकी।
इसी लकीरका मुझको फकीर होना था॥

अमानत—

आँसू रवाँ[8] है जुल्फे-सियहके खयालमें।
मोती पिरो रहा हूँ तेरे बाल-बालमें॥

क़लक़—

ऐसे दीवाने हों सर सगसे[9] फोड़ें अपना।
कभी बादाम जो देखें तेरी प्यारी आँखे॥

अमीर मीनाई—

वे करते है बातें अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट हो कोई फिसलकर॥

हजारों खार[10] लाखों फूल उस गुलशनमें है लेकिन—
न तुम-सा नाज़नी[11] कोई न हम-सा नातवाँ[12] कोई॥

---

[1]लैलाकी ऊँटनीकी; [2]मजनूँके जगलमें; [3]उन्मादरूपी अजगरके; [4]मदिरासे, अंगूरकी बेटीसे; [5]धर्मात्माकी; [6]न पीनेकी प्रतिज्ञा; [7]हारकी; [8]बहते हुए; [9]पत्थरसे; [10]काँटे; [11]कोमल; [12]कमजोर।

उक्त अशआरमें शब्दोंके रख-रखाव और मुनासिबतके अतिरिक्त कोई ऐसे हृदयस्पर्शी भाव नहीं हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर कुछ क्षणके लिए मनुष्य अपनेको भूल जाय। इन्हें पढते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक शब्दके मुक़ाबिलेमें दूसरा शब्द रखने और शाइराना करतब दिखानेके लिए ही इस वाग्जालकी रचना हुई है। रूठे हुएके लिए मन गये, बिगड़े हुएके लिए बन गये, इसी तरह सफेद टाइपमें दिये गये अन्य शब्दोंको एक दूसरेके मुका-बलेमें इस तरह बिठाया है, जैसे कठपुतलीके खेलमें पहलवान सजे बैठे हों।

रंगीन, अश्लील और ख़ारिजी शाइरीके अतिरिक्त लखनवी शाइरोंने अतिशयोक्तिपूर्ण अस्वाभाविक कलाम बहुत कहा, और ये सब रंग लखनऊ तक ही सीमित न रहकर समस्त उर्दू-संसारमें फैल गये। मुसहफ़ी-जैसा संजीदा देहलवी शाइर लखनऊ पहुँचनेपर इस तरहके रंगीन-अश्लील शेर कहनेपर मजबूर हो गया—

> आया लिये हुए जो वोह कल हाथमें छड़ी।
> आते ही जड़ दी पहली मुलाक़ातमें छड़ी॥
>
> पानी भरे हैं यारो वां फ़रमजी[1] दुशाला।
> लुंगीकी सज दिखाकर सकनोंने[2] मार डाला॥

देहलवी शाइर सौदा नसीर, ज़ौक़ तो ख़ारिजी रंगमें कहते ही थे। मोमिन-ओ-ग़ालिब-जैसे देहलवी शाइर भी शुरू-शुरूमें ख़ारिजी रंगसे प्रभावित हो गये थे। वह तो ख़ैर गुज़री जो जल्दी सँभल गये, वरना आज ग़ज़लका न जाने क्या रूप हुआ होता?

कहनेको दाग़ देहलवी शाइर थे, मगर उनका कलाम पूर्णरूपेण लखनवी रंगीन शाइरीमें सराबोर है। वे ग़ालिब-ओ-मोमिनकी शाइरीके बजाय इश्क़-ओ-जुरअतके अधिक नज़दीक हैं। यह बात दूसरी है कि देहलवी ज़बान, मुहावरे एवं अपने मख़सूस (विशेष) अन्दाज़े-बयान, और

---

[1] एक प्रकारका रंग; [2] मिस्त्रीकी पत्नीने।

तर्जे़अदाकी वदौलत सर्वत्र छा गये और उनका अनुकरण करनेको तत्कालीन लखनवी उस्ताद भी मजबूर हो गये।

इसतरहकी रगीन खारिजी और अश्लील शाइरीने लखनऊको वहुत वदनाम किया। उर्दू शाइरीके सौभाग्यसे १८५७ के विप्लवमे लखनऊकी नवावी भी चौपट हो गई। जो लखनवी शाइर कौसरो-तसनीमके धारेमे वहे जा रहे थे, वे विप्लव रूपी मौजोंके तमाचे खाकर हाथ-पाँव मारनेको मजवूर हो गये। किनारेपर आकर उन्होने देखा कि वे सचमुच मजनूं मालूम होते है, उनका गरेवान वाकई तार-तार हो गया है और जल्द न सँभले तो उनका नातवाँ जिस्म दुनियाके थपेडे खाकर वरकरार नही रह सकेगा।

लखनऊकी पुरानी और नई शाइरी

सौभाग्यसे उन दिनो रामपुरके नवाव भी वहुत वड़े अदव-नवाज़, और सुखन-फहम थे। शनै-शनै मुसीवतके मारे देहलवी-लखनवी शाइर वहाँ एकत्र हो गये। दिन-रातकी अदवी-सुहवतो और मुशाइरोमें एक साथ सम्मिलित होनेसे परस्पर विचारोके आदान-प्रदानसे सवने यह महसूस किया कि अव जुरअत-ओ-इंशाकी रंगीन, नासिखकी खारिजी और अतिशयोक्तिपूर्ण शाइरीका ज़माना लद गया। अव तो दाखिली एव स्वाभाविक शाइरीका ही युग है। जो युगके विपरीत चलेगा खता खायेगा। चुनाचे देहलवी-लखनवी स्कूलोकी दीवारें ढाकर एक ऐसा विश्वविद्यालय वना दिया गया, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तके स्नातक एक ही प्रकारका कोर्स पढ सकें।

लखनऊके पुराने उस्ताद शेरके वाह्य सौन्दर्यपर जान देते थे, वर्तमान शाइर शेरके अतरगमे प्राण फूंकता है और उसका वाह्य रूप भी सुरुचिपूर्ण रखता है। पुराने शाइरोमें ज़ाहिरा शानो-शौकत, रोव-दावका वहुत खयाल रखा जाता था। नया शाइर अपने समूचे व्यक्तित्वको इस तरह वनाता है कि उसका हर सकेत वा-असर होता है।

पहले-पहल गजलके प्रति विद्रोही झंडे 'हाली' और 'आजाद' ने खड़े किये। हाली, 'गालिब' के और आजाद, 'जौक' के शिष्य थे। दोनोंके ही उस्ताद गजलके माने हुए उस्ताद हुए हैं। होना तो यह चाहिए था कि 'हाली' और 'आजाद' गजलको अत्यधिक मोहक और व्यापक बनाकर अपने उस्तादोंके योग्य उत्तराधिकारी शिष्य प्रमाणित होते, किन्तु यह उनकी योग्यता और सामर्थ्यके बाहर था। जिस बज्मे-गुलशनमें[1] मीर, आतिश, गालिब, मोमिन, जौक-जैसे तूतिये-अदब नग्मासरा[3] थे, उस बज्ममें नग्मा छेड़नेके लिए कलेजा कहाँसे लाते? अब उस वक्त जो इनके समकालीन, फहाशी (अश्लील) और बेवक्तकी रागिनी अलाप रहे थे, जिससे भले आदमियोंकी नींदें उचाट थीं। हाली-ओ-आजादको उनका यह हू-हक पसन्द न आया और तत्कालीन गजलगोईसे खीझकर उन्होंने बहुत जोर-शोरके साथ गजलका विरोध किया। स्वयं गजलें लिखनी बन्द कर दीं और लेखो-व्याख्यानों-द्वारा नज्म लिखनेका प्रचार ही नहीं किया, स्वयं भी काफी नज्में लिखीं।

गजलकी मुखालफत

१८५७ ई० के विप्लवके पश्चात् मुसलमानोंकी जो दयनीय स्थिति हुई, उसने भी इस प्रचारमें सहायता दी। बादशाहत समाप्त हो गई। नवाब और रईस बरबाद हो गये। हजारों घर उजड़ गये, अनगिनत प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा विद्वान् सरेबाजार फाँसी चढ़ा दिये गये, दिल्लीकी फतहपुरी मस्जिदमें घोड़े बाँध दिये गये और मुसलमान कुचल दिये गये।

कुचले हुए साँपकी जो प्रतिहिंसाकी भावना होती है, वही मुसलमानोंकी होनी चाहिए थी, जैसीकी हिन्दुओंकी हुई। यानी उनको मुसलमान विजेताओंने विजित किया तो, उन्हें कभी चैनसे नहीं रहने दिया। बराबर

---

[1]उद्यानरूपी साहित्य गोष्ठीमें, [2]साहित्यिक उद्यानके गानेवाले पक्षी; [3]संगीतमग्न।

सघर्ष करते रहे और अग्रेज़ोने कुचला तो उनके नाकमे दम बराबर रखा और आखिर स्वाधीन होकर रहे। लेकिन मुसलमानोकी यह प्रतिहिंसा देशके दुर्भाग्यसे जी हुज़ूरीमे परिणित हो गई। क्योकि उन दिनो मुसलमानोंके प्रभावशाली नेता सर सैयद अहमद अग्रेज़ी हुकूमतके बहुत बड़े हिमायती और हितैषी थे। वे अलीगढ़ युनिवर्सिटीके जन्मदाता और प्राण थे। उन्होने मुसलमानोमे यह भावना भर दी कि "अंग्रेज़ सरकारके भक्त रहकर जितने भी अधिकार ले सको लेते रहो, अग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करके उच्च-से-उच्च ओहदे प्राप्त करो, और इस तरह अपना राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पडोसी जातियोंसे बुलन्द करो।" हाली और आज़ादने उनका हर तरहसे समर्थन किया और साथ भी दिया।

परिणाम इसका यह हुआ कि उर्दूका युवकवर्ग शनैः-शनैः नज्मकी ओर आकर्षित होने लगा। यहाँतक कि बहुत-से गज़ल-गो शाइर भी गज़लको तिलाँजलि देकर नज्मके क्षेत्रमें उतर गये, और नई पीढीने तो ग़ज़लकी तरफ़ नज़र भरकर देखना भी उचित नही समझा।

इस विरोध और बहिष्कारसे ग़ज़लको प्रकट रूपमें तो बहुत बडा धक्का पहुँचा, किन्तु अतरंगमे इससे लाभ ही हुआ। क्योकि उस जीर्ण-शीर्ण गजलका कायाकल्प न हुआ होता तो वह आज इस तरह आबो-तावके साथ चमकती हुई दिखाई न देती। नये-नये अकुरोके विकासके लिए मुर्झाये हुए फूल-पत्तोको नष्ट करना और ज़मीनको गोडते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

ग़ज़लमें स्वाभाविकता और विकार

जब दक्षिणमें उर्दू-शाइरीका प्रारम्भ हुआ तो शुरू-शुरूमे प्रेमपूर्ण भावनाओको सीधे-सादे शब्दोमें व्यक्त किया जाता था। मुसलमान शाइरोने ईरानी गज़लके ढगपर शाइरी शुरू की। लेकिन उनके सामने भारतीय कविताका मोहक रूप था। अत. उन्होने भी सजन, पिया, पपीहा आदि भारतीय पात्रो और भारतीय उपमाओ, उदाहरणोंका प्रयोग किया।

चूंकि दक्षिणी मुसलमान शाइर भी प्राय: ईरान और फ़ारससे आये थे और शाइरी भी दक्षिणमें सीमित न रहकर दिल्लीतक व्यापक हो गई थी, तत्कालीन शाइर प्राय: फारसीके विद्वान् थे, अत: बहुत शीघ्र गजलमें फारसीका अनुकरण होने लगा।

नदीका उद्‌गम अत्यन्त सूक्ष्म और मन्दगतिसे होता है। उद्‌गम स्थान-में वह तेजी और भयावह स्थिति नही होती, जो उत्तरोत्तर आगे बढ़नेपर होती है। शाइरीका प्रारम्भ भी जब हुआ होगा तो स्वाभाविक और सरल ही हुआ होगा। मनकी भावनाओंको सीधे-सादे शब्दोमे अकृत्रिम ढगसे व्यक्त किया गया होगा। शनै-शनै. उपमाओं-उदाहरणोंका प्रादुर्भाव हुआ होगा।

जिस हबीब (प्रियतम या प्रियतमा) को देखकर उसकी ओर मन आकर्षित हुआ होगा, उसे मनमोहन कहा गया होगा। फिर वही मन जब उसके लिए उचाट-सा या खिचा-खिचा-सा रहने लगा होगा, तब उस हबीबको चित-चोर भी कहा गया होगा, और कुछ इस तरहके भाव व्यक्त किये गये होगे—

वही मैं हूँ 'असर' वही दिल है।
अब ख़ुदा जाने क्या हुआ मुझको ?

—असर देहलवी

ग़म है या इन्तज़ार है, क्या है ?
दिल जो अब बेक़रार है, क्या है ?

—सोज़

हम तेरे इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं, मगर हां।
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है।।

—मीर

आगे चलकर यह दिल मलनेवाला हबीब, चित-चोर कहलाने लगा—

दिल ले गया है मेरा, वोह सीमतन[1] चुराकर।
शरमाके जो चले है, सारा वदन चुराकर॥
—मुसहफ़ी

दिलकी हालत

इसी दिलको रफ़्ता-रफ़्ता मनचले शाइरोंने ऐसी चीज तसव्वुर कर लिया, जो बा-आसानी जिस्मसे जुदा किया जा सकता है। उसके चाहे जितने टुकडे किये जा सकते है। वे टुकडे फिर जोडे भी जा सकते है। दिल नक़्द या उधार बेचा भी जा सकता है। चोरी भी किया जा सकता है, पाँवके तले कुचला भी जा सकता है।

अख़्तर— सौ टुकड़े हो गया न सुनी हमने पर सदा[2]।
क्योंकर न जीको भाये, अदाये-शिकस्ते-दिल[3]?

बातोंमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको।
यह सहर[4] है, एजाज़[5] है या शीशागरी[6] है॥

नासिख़—जो दिलको देते हो 'नासिख़'! तो कुछ समझकर दो।
कहीं ये मुफ़्तमें देखो न माल तलपट हो॥

आतश— किसीने मोल न पूछा दिले-शिकस्ताका[7]।
कोई ख़रीदके टूटा पियाला क्या करता?

---

[1]गोरा, चिट्टा; [2]आवाज़; [3]हृदय टूटनेका हाव-भाव; [4]जादू; [5]सम्मोहन शक्ति; [6]शीशेको जोड़नेकी कला; [7]टूटे दिलका।

बहर— मेरा दिल किसने लिया नाम बताऊँ किसका?
मैं हूँ या आप हैं, घरमें कोई आया न गया॥

रिन्द— फेंक दूँ दिलको अभी, चीरके पहलू अपना।
तुझपै क़ाबू नहीं, दिलपर तो है क़ाबू अपना!

ज़ौक़— हाथ आये किस तरहसे दिले-गुमशुदाका खोज?
है चोर वोह कि जिसपै किसीका भरम नहीं॥

वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने।
यारोंका गया उनपै भरम और ज़ियादा॥

अमानत— गुमाँ न क्योंकि करूँ तुझपै दिल चुरानेका?
झुकाके आँख, सबब क्या है मुसकरानेका?

तसलीम— तड़पते देखता हूँ जब कोई शय।
उठा लेता हूँ, अपना दिल समझकर॥

अमीर मीनाई—
बराबर आईनेके भी न समझे क़द्र वोह दिलकी।
इसे ज़ेरे-क़दम[1] रक्खा, उसे पेशे-नज़र[2] रक्खा॥

निज़ाम रामपुरी—
तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है, बता कुछ तो 'निज़ाम'!
मुझसे दिल माँगे तो इंकार करूँ या न करूँ?

दाग़— मैंने जो माँगा कभी दूरसे दिल डर-डरकर।
उसने धमकाके कहा—"पास तो आ देते हैं॥—"

मोमिन— बात करनेमें रक़ीबोंसे[3], अभी टूट गया।
दिल भी शायद उसी बदअहदका[4] पैमाँ[5] होगा॥

---

[1]पाँवके नीचे, [2]आँखके सामने, [3]शत्रुओंसे, [4]झूठे वादा करनेवाला; [5]वादा-भरोसा।

दर्द— किसीसे क्या बयाँ[1] कीजे उस अपने हाले-अबतरका[2]।
दिल उसके हाथ दे बैठे, जिसे जाना न पहचाना॥

असर देहलवी—कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है।
औरके हाथमें मेरा दिल है॥

नहीं मालूम दिलपै क्या गुज़री?
इन दिनों कुछ ख़बर नहीं आती॥

यक़ीन— दिल छोड़गया हमको, दिलबरसे तवक्कोह[3] क्या?
अपनेने किया यह कुछ, बेगानेको[4] क्या कहिए?

बेदार— देता नहीं दिल लेके वोह मग़रूर[5] किसीका।
सच है कि न ज़ालिमपै चले ज़ोर किसीका॥

ज़िया— मैंने कल पूछा 'ज़िया' से दिल किधरको खो दिया।
उसने कूचेको तेरे बतलाके टपसे रो दिया॥

अहमन— दिलको खोय हैं कल जहाँ जाकर।
जीमें है आज जी भी खो आऊँ॥

बयान— साफ़ मुँहपर मैं नहीं कहता कि होगा उसके पास।
वर्ना क्या वाक़िफ़ नहीं मैं दिल है मेरा किसके पास॥

मुसहफ़ी—'मुसहफ़ी' हम तो यह समझे थे कि होगा कोई ज़ख़्म!
तेरे दिलमें तो बहुत काम रफ़ूका निकला॥

चितवन

हबीबकी नज़रोंमें दिलको बेक़रार-ओ-बेचैन करनेकी शक्ति होनेके

---

[1]बयान, [2]शोचनीय अवस्थाका; [3]आशा; [4]ग़ैरको, परायेको; [5]घमण्डी।

कारण, उनकी भवोंको धनुप, पलकोंके वालोंको तीर और तिर्छी-चितवनको कटारसे उपमा दी गई। चित्तको आकर्षित करने या दिलको घायल करनेवाली इस अदाके सम्बन्धमे गालिब किस सादगीसे फर्माते है—

इस सादगीपै कौन न मर जाये ए खुदा!
लड़ते है और हाथमें तलवार भी नहीं!

ज़ौक किस भोलेपनमे दरियाफ्त करते है—

तुफ़ग़ो-तीर[1] तो ज़ाहिर न था कुछ पास कातिलके।
इलाही, फिर जो दिलपै ताकके मारा तो क्या मारा?

और इस वारका क्या हश्र हुआ, यह भी ज़ौककी ज़बानी सुनिए—

निगहका वार था दिलपर, तड़पने जान लगी।
चली थी बर्छी किसीपर, किसीके आन लगी!

इसी भावको 'दर्द' किस खूबीसे व्यक्त करते है—

अन्दाज़ वोही समझे मेरे दिलकी आहका।
ज़ख्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

और वज़ीरका अन्दाज़े-बयान मुलाहिज़ा हो—

तिर्छी नज़रोंसे न देखो आशिके-दिलगीरको।
कैसे तीरन्दाज़ हो? सीधा तो कर लो तीरको॥

अदा (हाव-भाव)

इन्हीं आकर्षित करनेवाली अथवा दिलको घायल करनेवाली अदाओं-को लेकर शाइरोंने राईका पर्वत बना डाला। उसे कातिल, जल्लाद और कस्साबने भी घिनौना रूप दे डाला।

---

[1]तमचा।

ज़ौक़— ज़िबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर[1]।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर॥

उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे एहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका॥

मोमिन— ख़बर नहीं है कि उसे क्या हुआ? पर इस दरपर[2]।
निशाने-पा[3] नज़र आता है नामाबरका-सा[4]॥

तू किसीका भी ख़रीदार नहीं पर, ज़ालिम!
सर-फ़रोशोंका[5] तेरे कूचेमें बाज़ार लगा॥

जवाबे-ख़ूने-नाहक़[6] मेरा ऐसा क्या दिया तूने?
कि ज़ालिम! रह गये मुँह लेके सब अहबाब[7] अपना-सा॥

दाग़— सर काटकर लगाते हैं, गरदनके साथ फिर।
कुछ रह गई है उनको हविस[8] इम्तहानकी॥

महफ़िले-यार कस्साबकी दुकान मालूम होती है—

करीनेसे[9] अजब आरास्ता[10] क़ातिलकी महफ़िल है।
जहाँ सर चाहिए सर है, जहाँ दिल चाहिए दिल है॥

तेरी तलवारके क़ुर्बान ऐ सफ़्फ़ाक़[11]! क्या कहना!!
इधर कुश्तेपै[12] कुश्ता है, उधर बिस्मिलपै बिस्मिल है[13]॥

रूप

प्रियतमाके रूपका बखान भी प्रारम्भमे स्वाभाविक हुआ होगा। फिर उसे गुलबदनी, हंसगामिनी, मृगनयनी, चन्द्रमुखी आदि भी कहा जाने लगा होगा।

---

[1]उपाय; [2]दर्वाज़ेपर; [3]पाँवका निशान; [4]पत्रवाहकका; [5]सर बेचनेवालोंका; [6]व्यर्थ वध करनेका जवाब; [7]इष्ट-मित्र; [8]तृष्णा; [9]व्यवस्थित ढंगसे; [10]सजी हुई; [11]निर्दयी, बेरहम; [12]आशिकोंकी लाशोंके ढेर; [13]तड़पते हुए।

ये जमालयाती शेर देखिए किस स्वाभाविक ढंगसे बयान किये गये हैं—

मीर— नाज़ुकी उसके लबकी[1] क्या कहिए ?
पंखड़ी इक गुलाबकी-सी है ॥

माथेकी बिन्दीका तसव्वुर देखिए—

दर्द— फैला है कुफ़्र याँ तक काफ़िर तेरे सबबसे ।
शमए-हरम[2] भी दे है, माथेपै अपने टीका ॥

[अहले इस्लाममें बिन्दी या तिलक लगाना वर्जित है। फिर भी देखिए, उस प्रियतमाकी बिन्दीका इतना व्यापक अनुकरण हुआ है कि मस्जिदमें जलते हुए चरागसे जो लौ ऊपरको उठ रही है, उसे लौ न समझो, वह तो शमए-हरम अपने माथेपै बिन्दी लगा रही है।]

दर्द— बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द' !
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे ॥

ताबाँ— जब पान खाके ज़ालिम गुलशनमें जा हँसा है।
बे अख़्तियार कलियाँ, तब खिलखिलाइयाँ हैं ॥

ज़ौक़— गुंचे तेरी गुंचादहनीको[3] नहीं पाते।
हँसते तो हैं, पर तेरी हँसीको नहीं पाते ॥

क़ायम— क्यों न रोज़े में देख खन्दये-गुल[4] ?
कि हँसे था वोह बेवफ़ा भी यहीं ॥

जलाल— रुख़े-रोशनसे[5] किसने उलटी नक़ाब ?
जल उठे दाग़ इक बुझे दिलके ॥

---

[1]ओठोंको, [2]मस्जिदका दीपक, [3]फूल जैसे मुँहको, [4]फूलोंकी मुस्कानको, [5]प्रकाशमान चेहरेपरसे।

ममनून— तवस्सुमे-लबे-ग़ुंचेको[1] देख रोता हूँ।
कि रंग है यह उसी ख़न्दये-निहानीका[2]॥

दर्द— जूँ चाहिए उस तरह बयाँ[3] हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे[4] ही तू वस्फ़[5] अपनी कमरका॥

कपोलके तिलकी कितनी अछूती कल्पना है।

अमीर मीनाई—किसीने लफ़्ज़े-रुख़ बेनुक़्ता कब आलममें देखा है?
न होता किस तरह नुक़्ता रुख़े-महबूबपर[6] तिलका॥

[उर्दूमें रुखके 'ख' के ऊपर नुक्ता लगता है। अत. माशूकके रुख (कपोल) पर तिल रूपी नुक्ता होना लाजिमी था।]

प्रियतमाका शर्मीलापन देखिए—

असर देहलवी—पहले सौ बार इधर-उधर देखा।
जब मुझे डरके इक नजर देखा॥

मीर— देख लेता है वह पहले चारसू[7] अच्छी तरह।
चुपके-से फिर पूछता है, "मीर तू अच्छी तरह?"

प्रियतमाके इस जमालपर शाइरोंने वह रंगामेज़ी की कि उनके हस्त-कौशलके नीचे वास्तविक रूप तो दब गया और एक ऐसा बुत उभर आया, जिसे किसी भी हालतमें प्रियतमा या हबीब तसव्वुर नहीं किया जा सकता।

दुनियाभरके हथियारोंसे सुसज्जित, आँखोंमें कातिलाना डोरे पड़े हुए, आस्तीन ख़ूनमें सनी हुई, कयामतबरपा चाल, आशिकोंके दल-के-दल जिस प्रियतमाके साथ हों, उसे कौन समझदार प्रियतमा बनानेको प्रस्तुत होगा?

अज्ञात— चढ़ाई है दिले-ग़मनाकपर लश्कर-के-लश्करकी।
छुरीकी, तीरकी, तलवारकी, दश्नेकी, ख़ंजरकी॥

---

[1]फूलोंकी मुसकराहटको; [2]छुपी हुई मुसकानका; [3]कथन; [4]मुखार-विन्दसे; [5]सौन्दर्य-वर्णन; [6]प्रियतमाके कपोलपर; [7]चारों तरफ़।

अमीर मीनाई—

करीब है यार रोज़े-महशर[1] छुपेगा कुश्तोंका[2] ख़ून क्योंकर?
जो चुप रहेगी ज़बाने-ख़ंजर, लहू पुकारेगा आस्तींका॥

यह सौन्दर्य-वर्णन देखिए जो असम्भव कल्पनाओंके कारण उपहासास्पद बन गया है—

अमीर— क्या नज़ाकत है, जो तोड़ा शाख़े-गुलसे कोई फूल।
आतिशे-गुलसे[3] पड़े छाले तुम्हारे हाथमें॥

इंशा— नज़ाकत उस गुले-रानाकी[4] देखिए 'इंशा'।
नसीमे-सुबह[5] जो छू जाये, रंग हो मैला॥

अज्ञात— सनम, सुनते हैं, तेरे भी कमर है!
कहाँ है? किस तरफ़को है? किधर है?

अफ़ज़ल— हरचन्द जुस्तजूमें[6] रहे नाहुवे-निगाह[7]।
देखा जो दूरबींसे न आई नज़र कमर॥

[भला जिस प्रियतमाकी कमर ही दिखाई न दे, वह भुतनीके सिवा और क्या होगी?]

मुनीर शिकोहाबादी—

कुछ जवानी है अभी, कुछ है लड़कपन उनका,
दो दग़ाबाज़ोंके क़ब्ज़ेमें है जोबन उनका॥

ग़ालिब— शबको किसीके ख़्वाबमें आया न हो कहीं!
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुकबदनके[8] पाँव!!

---

[1]प्रलयका दिन, [2]आशिकोंके कत्लका; [3]फूलोंकी गर्मीसे; [4]फूल-जैसे सुकुमारांगी; [5]प्रातःकालीन मृदु पवन, [6]तलाशमें रहनेवाले; [7][illegible], [8]कोमलांगीके।

दाग़— वोह दबे पाँव चले हश्रके[1] डरसे, तौबा !
फ़िक्र है, चाल उड़ाले न क़यामत मेरी ॥

अपनी तसवीरपै नाज़ाँ[2] हो तुम्हारा क्या है,
आँख नरगिसकी, दहन[3] ग़ुंचेका,[4] हैरत मेरी ॥

मोहसिन—नाज़ुकी कहते है इसको पाँव ज़ख्मी हो गये।
आ गई चलनेमें जब तसवीरें-नश्तर ज़ेरे-पा ॥

अज्ञात— सीखे हो किससे, सच कहो प्यारे, यह चाल-ढाल ?
तुम इक तरफ चलो हो तो तलवार इक तरफ़ ?

दाग़— लड़े मरते है आपसमें तुम्हारे चाहनेवाले।
यह महफ़िल है तुम्हारी या कोई मुर्ग़ोंकी पाली है ?

प्रेम-रोग

तीरे-नज़रके घायलको 'आशिक' और उसके ला-इलाज मर्ज़को 'इश्क़' कहा जाता है। 'मीर' ने जिन्दगी भरके तजुर्बेको इस एक मिस़रेमे उडेल दिया है—

मरज़े-इश्क़का इलाज नहीं

जब यह घाव, दिल पहले-पहल खाता है तो बकौल 'गेफ्ता' कुछ इस तरह महसूस होता है—

इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो यह 'आग-सी' सीनेके अन्दर अपने आप लगाये ? टी० बी० के कीटाणु भी क्या कोई सिरफिरा अपने सीनेमे अपने आप छोडता है ? वे तो न जाने कैसे और कब आवारा मेहमानकी तरह तशरीफ ले आते हैं। यही हाल ज़ख्म खाते वक्त दिलका होता है—

---

[1]प्रलयके; [2]अभिमानी; [3]मुख; [4]कलीका।

हाली— इश्क़ सुनते थे जिसे हम, वोह यही है शायद।
ख़ुद-ब-ख़ुद दिलमें है इक शख़्स समाया जाता॥

और जब यह रोग ख़ुद-ब-ख़ुद दिलमें समाकर अपना असर ज़ाहिर करता है तो रोगी (आशिक़) छटपटाता है और अपने स्वस्थ दिनोंको याद करता है—

जलील मानिकपुरी— दर्दसे वाक़िफ़ न थे, ग़मसे शनासाई[1] न थी।
हाय क्या दिन थे, तबीयत जब कहीं आई न थी॥

यह सीनेके अन्दर लगी हुई आतशे-इश्क़ रूईकी आगकी तरह जिस्मको फूँकती रहती है और अन्तमें हैरतसे लोग पूछते हैं—

घुल गया आपो आप कुछ 'क़ायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

और जब लोगोंको वास्तविक स्थितिका ज्ञान होता है तो श्मशान घाटके वैराग्यपूर्ण स्वरमें लोग कह उठते हैं—

दर्द— क़हर[2] है, मौत है, क़ज़ा[3] है इश्क़।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क़॥

मरज़े-इश्क़में तड़पना, आहें भरना, रोना-सिसकना, तारे गिन-गिनकर रातें काटना लाज़िमी है। इन्हीं मनो-व्यथाओंका कुछ आभास इन प्रेम-रोगियोंने देखिए किस बेतकल्लुफ़ीसे दिया है—

आशिक़की मजबूरी

दर्द— अपने मिलनेसे मना मतकर।
इस बिन बेइख़्तियार हैं हम॥

---

[1]मेल-जोल, परिचय; [2]ज़ुल्म; [3]मृत्यु।

आशिक़का मशगला

बेदार— उसके मज़कूरके[1] सिवा 'बेदार'!
और कुछ बात ख़ुश नहीं आती॥

क़ायम— अब तो ने गुल न गुलसिताँ है याद।
उसी मुखड़ेकी हर ज़माँ है याद॥

दर्द— हमें तो बाग़ तुझ बिन ख़ानये-मातम[2] नज़र आया।
इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम[3]॥

रोना-बिसूरना

मीर— सिरहाने 'मीर'के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है॥

फ़ानी बदायूंनी—'फ़ानी'को या जुनूँ[4] है या तेरी आरज़ू[5] है।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया॥

तारे गिनना

असर लखनवी— हमने रो-रोके रात काटी है।
आँसुओंपर यह रंग तब आया॥

साक़िब लखनवी—लूटनेवाले हमारी नींदके।
रात भर किस चैनसे सोते रहे!

जो प्रेम-रोगी अगारोंपर लोटनेको, रोते-बिलखते जीते रहनेको और आँखोंमें नींद काटनेको मजबूर हो जाये, जिसे मौत माँगेसे भी न मिले, वह ज़िन्दा दरगोर है—

---

[1]ज़िक्रके; [2]शोक-घर; [3]ओस; [4]उन्माद; [5]इच्छा।

फ़ानी बदायूंनी—नहीं जरूर कि मर जाएँ जाँनिसार[1] तेरे।
यही है मौत कि जीना हराम हो जाये॥

ऐसी हालतमे प्रेयसीको पत्र लिखकर अपनी दयनीय स्थितिसे अवगत कराना आशिकका स्वाभाविक धर्म है। वह विरह-ज्वरमें घुला जा रहा है और प्रियतमाको आभासतक नही—

दीपकको भावै नहीं जल-जल मरै पतंग

कभी वह स्वय भी मिलनेका प्रयास करता है, जो कि लाज़िमी है, मगर हमारे शाइरोने वह तिलकी तेलन बनाई है कि ख़ुदाकी पनाह—

आतशे-इश्क़ (प्रेम-ज्वाला)

ज़फर— सोज़िशे-दाग़े-अलमसे[2] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥

भेजा, दिल, कलेजा, जब सब जल गये तो बचा क्या? और शाइर फिर यह बात कहनेको जीवित कैसे रहा? आजकल तो सीनेमे एक-दो खरोच आ जाती है, तो कम्बख्त टी॰ बी॰ डिक्लेयर कर दी जाती है और मरीज़की चन्द दिनोमें ही राम-नाम सत बुल जाती है।

मजमूने-सोज़े दिल क्या था फास-फोरस था कि;—

ज़फर—उफ! मेरे मज़मूने-सोज़े-दिलमें[3] भी क्या आग है!
ख़त जो कासिद उसको मैंने लिखके भेजा, जल गया!!

अमीर मीनाई—यही सोज़े-दिल है तो महशरमें जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥

वाइज़ा[4]! समझा है तू दोज़ख जिसे।
कुछ शरर[5] हैं आहे-आतशबारके[6]॥

---

[1]प्राण न्योछावर करनेवाले; [2]दुखोकी आगसे; [3]हृदयकी दग्धतामे; [4]व्याख्यान दाता; [5]चिनगारी, [6]आह रूपी आगके।

जलाल—दागपर मेरे पड़ी मुरगाने-गुलशनकी[1] जो आँख।
सबने मिनकारोंमें[2] ले-ले कर गुलेतर[3] रख दिया॥

कमजोरी

गमे-हिज्रमे नातवाँ (निर्बल) होना भी स्वाभाविक है। मगर इस लफ्फाजी नातवानीको क्या कहा जाय? -

अमीर मीनाई— मेरे चेहरये-ज़र्दके[4] अक्ससे[5]।
हुई साकिया! ज़ाफरानी[6] शराव॥

वल्लाह! चेहरेका रग क्या रहा होगा? केसरके खेतमे भी शराव खीची जाय तो रग पीला न हो और एक 'अमीरमीनाई' है कि अक्ससे ही शराव ज़र्द हो गई। सुव्हान अल्लाह! क्या दरोग वयानी है।

असर देहलवी—वयाँ क्या करूँ नातवानी[7] मैं अपनी।
मुझे वात करनेकी ताकत कहाँ है॥

मोमिन – वह नातवाँ हूँ कि हूँ और नजर नहीं आता।
मेरा भी हाल हुआ तेरी ही कमरका-सा॥

जूँ निकहते-गुल[8] जुम्बिश[9] है जीका निकल जाना।
ऐ वादेसवा[10]! मेरी करवट तो वदल जाना॥

नातवाँ थे, पर न छेड़ा मिसले-ख़ार[11]।
खुद उलझकर रह गये दामनमें हम॥

अव तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे वीमारको।
जोफ़के[12] वाइस[13] कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है॥

---

[1]उद्यानके परिन्दोंकी; [2]चोंचोमे; [3]ताज़ाफूल; [4]पीले मुँहके; [5]प्रतिविम्बसे; [6]केसरिया; [7]कमजोरी; [8]फूलकी गन्ध; [9]हिलना-डुलना; [10]पवन; [11]काँटेकी तरह; [12]कमजोरीके [13]कारण।

पाँव तुरबतपर[1] मेरी देख सँभलकर रखना।
चूर हैं शीशये-दिल[2] संगे-सितमसे[3] पिसकर॥

मनो मिट्टीके नीचे दाब दिये गये, और क़ब्र बनते समय जब कारीगरोंने ठप-ठप की होगी, तब शीशये-दिल चूर-चूर होकर भी क्या बचा रहा था?

ग़ालिब— गुंजाइशे-अदावते-अग़ियार[4] इक तरफ़।
याँ दिलमें जोफ़से[5] हविसेयार[6] भी नहीं॥

असीर मीनाई—वोह नातवाँ[7] हूँ जो लेटा कभी मैं बिस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर॥

लाग़िर[8] हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नहीं।
रह-रहके देखती है क़ज़ा[9] सरसे पाँवतक॥

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल[10] हूँ।
खटकूँगा और अपने अदूकी निगाहमें॥

सूखकर काँटा होनेका गम नही, खुशी इसी बातकी है कि अदूकी आँखोंमें खटक होगी। कोई पूछे, अदूको तो इससे खुशी ही होगी कि रास्तेका काँटा दूर हुआ न कि रंज।[11]

---

[1]क़ब्रपर; [2]हृदय-दर्पण; [3]अत्याचारकी चक्कीसे; [4]प्रतिद्वन्द्वीकी शत्रुताके लिए दिलमें स्थान कहाँ?; [5]कमजोरीसे; [6]प्रेयसीकी चाह; [7]निर्बल; [8]पतला-दुबला; [9]मृत्यु; [10]ताज़ा पौदा।

[11]ज़ौक भी सूखकर काँटा होते हैं, मगर देखिए कितना पवित्र भाव व्यक्त करते हैं—

दस्तमें[1] आ जायगा लैला तेरे नाक़ेके[2] काम।
अच्छा हुआ मजनूँ तेरा जो सूखकर काँटा हुआ॥

मरते-मरते भी यही भावना है कि प्रेमीका उपयोग प्रेयसीके किसी काममें हो सके।

---

[1]रास्तेमें, सफरमें; [2]ऊँटनीके।

दाग़— क़ाहीदगीने[1] फेंक दिया दूर इस क़दर।
कोसों मैं आप अपनी नज़रसे निकल गया॥

नज़र आता हूँ न उस बज़्मसे उठ सकता हूँ।
नातवानीसे बड़े काम लिये जाते हैं॥

अब मेरे एवज़ उसे सँभालो।
मिलती नहीं नब्ज़ चारागरकी[2]॥

आशिककी नातवानी देखकर माशूकको रहम नहीं आता; बल्कि गुस्सा होकर कहता है कि इसने मेरी नज़ाकत उडा ली—

दाग़— नातवाँ देखकर अफ़सोस न आया मुझपर।
वोह ख़फ़ा है कि उड़ाई है नज़ाकत मेरी॥

गोया लखनवी— नातवाँ ऐसा हूँ गर साया[3] पड़ा दीवारका।
गिर पड़ी 'गोया' कि सकफ़े-आस्माँ[4] बालाए-सर[5]॥

आबाद लखनवी—लाग़र[6] हूँ इस क़दर कि दिखाई न दूँगा मैं।
अपनी तरह करेगा मुझे बेनिशाँ[7] दहन[8]॥

नासिख़— लाग़र हैं हम ऐसे कि निगल जाय ज्यों चिउँटी।
अटके न हमारा यह तनेज़ार[9] गलेमें॥

है गराँ[10] मकतूब,[11] तो कातिब[12] सुबक[13] है क़ासिदा[14]!
फेंक ख़त, ले चल हमारा जिस्मे-लाग़र हाथमें॥

इश्की—अलमदद[15] ऐ ज़ोफ़[16]! ऐसा कर तू क़ाहीदाबदन[17]।
वोह परी रखले समझकर मुझको तिनका कानका॥

---

[1]कमज़ोरीने, शरीरके हलकेपनने; [2]चिकित्सककी; [3]परछाईं; [4]आकाशकी छत; [5]सरपर; [6]कमज़ोर, दुबला-पतला; [7]निशान रहित; [8]मुख; [9]दुर्बल शरीर; [10]भारी; [11]पत्र; [12]पत्रलेखक; [13]हलका; [14]पत्र-वाहक; [15]सहायता कर; [16]दुर्बलता; [17]निर्बल।

वज़ीर—हाथमें लेजा तने-लाग़र मेरा नामेके[1] साथ।
डर न ऐ क़ासिद ! कि छः होती हैं अक्सर उँगलियाँ॥

ग़ालिब—हो जाऊँ मैं पामाल,[2] यहाँतक तो हूँ लाग़र।
चिउँटी भी जो शफ़क़तसे[3] रखे दोशपर[4] अंगुश्त[5]॥

नादर—पाँव जिस्मे-ज़ारपर मेरे पड़ा, बोला वोह शोख़—
"डाल दी है फ़र्शपर किसने यह सोज़न[6] ज़ेरे-पा?"

मोहसन—मैं वोह लाग़र हूँ यही समझा कुएँमें गिर पड़ा।
आगया है चिउँटियोंका जब कभी घर ज़ेरे-पा[7]॥

रोना-बिलखना

हिदायत—शबे-हिज्राँमें तेरे, सुबहके होते-होते।
इस्तख़्वाँ[8] शमअ़सिफ़त[9] बह गये रोते-रोते॥

मुसहफ़ी—रातदिन रोके निकाली थी मैं वाँ कुलफ़ते-दिल[10]।
आजतक दामने-सहरा[11] है ग़ुबार-आलूदा[12]॥

मोमिन—जा-ब-जा नहरें हैं जारीं, मैंने अश्क[13]—
पूछे होंगे दामने-कोहसारसे[14]॥

ममनून—मेरे यह गर्म आँसू पूँछ मत दस्ते-हिनाईसे[15]।
कि इन आँखोंसे रहता है रवाँ[16] सैलाब[17] आतशका[18]॥

रश्क—अबकी जाड़े हैं और नाल-ओ-आह।
इस तरहका कोई अलाव[19] नहीं॥

दर्द—अश्कसे मेरे फ़क़त दामने-सेहरा नहीं तर।
कोह[20] भी सब हैं, खड़े ता-ब-कमर[21] पानीमें॥

---

[1]पत्रके साथ; [2]नष्ट; [3]कृपासे; [4]कन्धेपर; [5]उँगली, [6]सुई; [7]पाँवके नीचे; [8]हड्डियाँ; [9]मोमबत्तीकी तरह; [10]दिलकी मड़ास; [11]जंगलोंके क्षेत्र; [12]धूल-धूसरित; [13]आँसू; [14]पर्वतोंसे; [15]मेंहदी लगे हाथोंसे; [16]जारी; [17]बहाव; [18]आगका; [19]ईंधन; [20]पहाड़; [21]कमरतक।

दर्द— बाज़ी बदी थी उसने मेरे चश्मे-तरके[1] साथ।
आख़िरको हार-हारके बरसात रह गई ॥

मोमिन—आग अश्के-गरमको[2] लगे, जी क्या ही जल गया!
आँसू जो उसने पूँछे शब[3] और हाथ जल गया ॥

सब्र— ऐसा फ़िराके-यारमें[4] रोया मैं रातभर।
बिस्तरपै मेरे हो गया पानी कमर-कमर ॥

अज्ञात— इक दिन फ़िराके-यारमें रोया मैं इस क़दर।
चौथे फ़लकपै[5] पहुँचा था पानी कमर-कमर ॥

अभी आपने तपिशे-हिज्र, नातवानी, रोने-बिसूरनेके लफ्ज़ी करिश्मे देखे। भला बताइए इसतरहके गपोडे भरे शेरोका किसीपर क्या असर होगा? शेर तो वास्तविक स्थितिके द्योतक, स्वच्छ हृदयसे लिखे जावें तभी उनका कुछ असर सम्भव हो सकता है। मगर ऐसे शेर जिनमें सत्य-का लेश नही, पड़े हुए असरको भी नष्ट कर देंगे।

विरह-ज्वरमें इतना तप रहा हूँ कि नाडी छूनेसे चिकित्सकके हाथमे छाला पड़ गया है। गमे-यारमें इतना कमज़ोर हो गया हूँ कि बिस्तरपर मौत भी ढूंढे तो न मिलूं। इश्के-महबूबमें इतना रोया हूँ कि नदी-नाले एक हो गये हैं। आहो-फुगाँका यह आलम है कि पडोसियोकी नींदे हराम हो गई हैं। संसारके सभी पर्वत मेरी आहोसे जलकर ख़ाक हो गये हैं, और तुम्हारे कपोलपर जो काला तिल है, वह उन्ही पर्वतोका धुआँ है।

इसतरहके सफेद झूठभरे शेर जिसको भी लिखे जायेंगे, झुँझला उठेगा। लेखकको सिडी-सौदाई समझेगा, और उससे दूरका वास्ता भी न

---

[1]आँसुओंसे भीगे नेत्रोंके; [2]गरम-गरम आँसुओंको; [3]रात, [4]प्रेयसीकी जुदाईमे; [5]आस्मानपै।

रखेगा। उसकी परछाईंसे भी भागेगा।[1] पत्र-वाहकको भी दुतकार देगा, ज्यादा हेरा-फेरी करेगा तो पिटवा भी दिया जायगा और कहीं पठान या राजपूत किस्मका हबीब हुआ तो उसे गर्दन उतारते भी क्या देर लगेगी ?[2]

उर्दू-शाइरीमें इश्क प्रायः इकतरफा पाया जाता है। महबूबको आशिकसे दूरका भी सरोकार नहीं होता। भला कल्पना कीजिए कि इन

इकतरफ़ा इश्क़

शाइरोंमें-से किसी एककी बहन-बेटीपर इनकी शाइरीमें वर्णित शोहदा, सिडी, आवारा-क़िस्मका कोई सरफिरा आशिक हो जाता और वह इनकी शाइरीके मुताबिक इनके कूचेमें आकर सीटियाँ बजाता, हर आदमीसे अपने इश्कका इजहार करते हुए इनकी बहन-बेटीके हुस्नका बयान करता, धक्के देनेसे भी न टलता, बिस्तर लगाकर इनके कूचेमें धरना दे देता, अँधेरे-उजालेमें मकानमें कूद जाता[3], चौकसीको दरबान रखते तो उन्हें फुसलाता,

---

[1]जब मेरी राहसे गुजरते हैं।
अपनी परछाईंसे भी डरते हैं॥

डरे न तो क्या करे? जब कोई सिडी या शोहदा भूतकी तरह पीछा करने लगे तो माशूक अपनी परछाईंसे भी डरे तो आश्चर्य भी क्या ?

[2]ग़ालिब— क़ासिदको अपने हाथसे गरदन न मारिए।
उसकी ख़ता नहीं है, यह मेरा क़ुसूर था॥

अमीर— जो लाश भेजी थी क़ासिदकी भेजते ख़त भी।
रसीद वोह तो मेरे ख़तकी थी, जवाब न था॥

[3]मोमिन—कूदकर घरमें जो पहुँचा मैं तेरे, पर क्या करूँ ?
दम निकल जाता था खटकेसे बराबर रातको॥

चकमा देता, फकीरोंका वेश बनाकर धोका[1] देता, गालियाँ देने[2] और धक्के मारनेसे भी न टलता तो इनके दिलपर क्या गुज़रती। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा क्या रहती ? इस तरहके अशआर लिखनेवालोने यह भी न सोचा कि हमारी भी बहन-बेटियाँ हैं। हमारी शाइरीका लक्ष्य यदि कोई उन्हे बना लेगा तो क्या हश्र होगा ?

---

[1]ग़ालिब— गदा[1] समझके वोह चुप था, मेरी जो शामत आई।
उठा और उठके क़दम मैंने पासबाँके[2] लिये॥

दाग़— दरबाँको मिलाकर जो पुकारा उन्हें मैंने।
खुद कहने लगे—"कौन है ? वोह घरमें नहीं है॥"

दरबानके झगड़ेने बड़ा काम निकाला।
घबराके वोह निकले इसी तदबीरसे बाहर॥

यह मेरे वास्ते ताकीद है दरबानोंपर।
कि "उसे मैं भी बुलाऊँ तो न आने पाये॥"

दरपै आके जल्द तुम सुन लो जो है मेरा सवाल।
गर लगाई देर तो जानों कि साइल[3] घरमें है॥

देखकर दूरसे दरबाँने मुझे ललकारा।
न कहा यह कि "ठहर जाओ ख़बर करते हैं॥"

[2]दाग़— हम एक कहके सुनते हैं मुँहसे तेरे हज़ार।
लपका पड़ा हुआ है यह गुफ़्तो-शुनीदका[4]॥

दागको देखकर वोह कहते हैं—
"यह मरेगा भी बेहया कि नहीं॥"

रोज़ जाता हूँ नये रूपसे उसके दरपर[5]।
रोज़ रखता हूँ नया नाम बदलकर अपना॥

शेष अगले पृष्ठ पर

---

[1]फकीर; [2]दरबानके; [3]भिक्षुक, मँगता; [4]वार्त्तालाप सुननेका; [5]दर्वाज़ेतक।

जहाँ इस तरहकी अस्वाभाविक, कपोलकल्पित शाइरीका दौर-दौरा हो, वहाँ अश्लील शाइरीका होना भी लाज़िमी था। जब चारों तरफ कुओंमें भंग पडी हो, तब उसे पीकर लोग बावले न हो तो और क्या हो? मोमिन, अमीर, निज़ाम, दागका तो खैर ज़िक्र ही क्या, वह तो रगीन शाइरीके लिए मानो पैदा ही हुए थे[1], ग़ालिब-जैसा

जब कूचेमें-से धक्के देकर निकाल दिये गये तो झूठ-मूठको बार-बार बीमार पड़ते रहे, ताकि शायद रहम खाकर आजाये—

अमीर मीनाई—आया न एक बार अयादतको[1] वह मसीह[2]।
सौ बार मैं फ़रेबसे[3] बीमार हो चुका॥

और जब बीमारीमें भी न आया तो मरनेका स्वाँग रचा कि शायद मौतकी खबर पाकर दुनियाकी ज़ाहिरदारीको तो आये—

यारो लपेट देना ज़िन्दा मुझे कफ़नमें

झूठ-मूठके मरनेपर तो क्या, वह सचमुच मर जानेपर भी नहीं आता—

ज़ौक़— मर गये पर भी तग़ाफुल[4] ही रहा आनेमें।
बेवफा पूछे है—"क्या देर है ले जानेमें?"

और जब यह फ़रेब भी नाकामयाब हुआ तो अर्थीमें लेटकर उसके कूचेसे जनाज़ा निकलवाया कि शायद जनाज़ा देखते ही बाहर निकल आये—

सोज़— जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूचा है, टुक करते हाय-हाय चलो॥

[1]उक्त शाइरोंका इस तरहका कलाम यहाँ हम जानबूझकर देनेसे गुरेज़ कर रहे हैं। अध्ययनशील व्यक्ति शेरो-सुखनके पहले भागमें ऐसे नमूने पा सकेंगे।

---

[1]बीमारीका हाल पूछने; [2]ईसाकी तरह मुर्दोंमें जान डालनेवाला माशूक़; [3]झूठ-मूठ, [4]उपेक्षा।

दार्शनिक और गम्भीर व्यक्ति भी कभी-कभी इसतरह् वहकने लगता था—

हमसे खुल जाओ ववक़्ते मै-परस्ती[1] एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज्रे-मस्ती एक दिन॥

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका वोसा, मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा॥

पीनसमें गुज़रते हैं जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोंको बदलने नही देते॥

दरपै[2] पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अर्सेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

ग़ैरको या रब! वोह क्योंकर मनअ् गुस्ताख़ी करे।
गर हया भी उसको आती है, तो शरमा जाये है॥

धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा[3] नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती[4] एक दिन॥

इसप्रकारकी असम्भव, कल्पित और अश्लील शाइरीने गजलकी आवरू धूलमें मिला दी। 'हाली' स्वय गज़लगो शाइर थे। मगर उन्हे गजलका यह पतन पसन्द न आया। १८५७ ई० के गदरके वाद मुसलमानोंकी जो शोचनीय स्थिति हुई, वादशाहत और नवावी मिट जानेसे जो उनकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुँचा, उसकी क्षति-पूर्ति असम्भव थी। उसपर भी तुर्रा यह कि वे इस तरहकी पतितोन्मुखी शाइरीमे उलझे हुए थे। 'हाली' को मुसलमानोका यह मृत्यु-महोत्सव पसन्द न आया, उन्होने मन-ही-मन गज़लको ख़त्म करनेका फ़ैसला किया—

---

[1]शराव पीते समय; [2]दर्वाज़ेपर; [3]आदत, स्वभाव, [4]शुरुआत, प्रारम्भ।

सुखनपर हमें अपने रोना पड़ेगा।
यह दफ़्तर किसी दिन डुबोना पड़ेगा॥

अत. उन्होने स्वयं गजले कहनी बन्द कर दी; नज्म लिखनेको प्रोत्साहन देने लगे और इश्किया कलाम लिखनेवालोका सख्तीसे विरोध करते हुए बुलन्द स्वरमें फर्माया—

ऐ इश्क तूने अक्सर कौमोंको खाके छोड़ा

नज्म-आन्दोलन गजलके लिए बहुत मुबारक साबित हुआ। जाहिरामें तो इस आन्दोलनसे गजलको बहुत बडा धक्का लगा, मगर हकीकतमें उसका कायाकल्प हो गया। अपनी पतितोन्मुखी स्थितिका आभास मिलते ही वह कल्पनालोकसे उतरकर जीवनके वास्तविक आँगनमे आरूढी हुई। खारिजी, रवायती, फहाशी, तकल्लुफी, बनावटी बन्धनोको तोडकर स्वतन्त्र हो गई। वह अपना सकुचित दृष्टिकोण छोडकर विशाल क्षेत्रकी ओर अग्रसर हुई। उसने युगकी रुचिको देखते हुए अपने मनको स्वस्थ, प्रफुल्ल एव उदार बनाया, और परिधानमे भी आश्चर्यजनक सुरुचिपूर्ण परिवर्तन किया।

गजलका कायाकल्प

यद्यपि हाली और आजादसे करीब सवा सौ वर्ष पूर्व नजीर अकबराबादी इस किस्मकी शाइरीका श्रीगणेश कर गया था। मगर दुर्भाग्यसे तत्कालीन उर्दू-साहित्यकोने उसे शाइर ही तसलीम नही किया। वह केवल एक चुटकुलेबाजसे अधिक नहीं समझा गया। अत: उसके अनुकरणकी हिम्मत आगे कौन करता? 'नजीर' सिर्फ अपनी नजीर बनकर रह गया।[1]

'अनीस' और 'दबीर' आदिने मर्सियोमे उन बहुत-सी बातोको समोया, जो गजलमें नही थी। मगर वह प्रयास सिर्फ इस्लाम

---

[1]'नजीर' उर्दूका सर्वप्रथम विशुद्ध भारतीय कवि हुआ है। इसका परिचय एवं कलाम 'शेरोशाइरी' मे पृ० १७५-१९०में मिलेगा।

मज़हवतक सीमित होकर रह गया, गज़लमें कोई परिवर्त्तन नही हो सका।

हाली-ओ-आज़ादके आन्दोलनको सर सैयद अहमदके कारण वहुत वल मिला। वे उन दिनो मुसलमानोंके वड़े और प्रभावशाली नेता थे, और सत्य वात तो यह थी कि वही इस आन्दोलनके मुख्य प्रवर्त्तक थे।

नज्म-आन्दोलनके वावजूद उस युगमें ग़ज़लके हिमायतियो, समर्थको और अनुयायियोंका वहुत वड़ा गिरोह था। उनमें अधिकांश लकीरके फ़क़ीर और पुराने ख़यालके थे, जो गज़लमे किसी किस्मका भी परिवर्त्तन, परिवर्द्धन एव संशोधन करनेके घोर विरोधी थे। उनका विश्वास था कि ग़ज़ल अपने चरमविकासको पहुँच चुकी है। पुराने उस्तादोंके वनाये हुए कानून-ओ-कायदेमे तरमीम करना गुनाह ही नही कुफ़्र भी है।

मगर उन्ही दिनो गज़ल-स्कूलके कुछ ऐसे स्नातक भी थे, जिन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। जो कयामतकी चालका अन्दाज़ा रखते थे, लिफाफ़ा देखकर ख़तके मज़मूनको भाँप लेते थे। उन्होने यह महसूस किया कि यदि अव गज़लका कायाकल्प नही किया गया तो उसका विनाश अवश्यम्भावी है। फिर उसे कोई नही वचा सकेगा।

नज्म उत्तरोत्तर तरक़्क़ी करती जा रही थी। दाग-जैसे रगीन गजल-गो उस्तादके—सर इकवाल,सीमाव अकवरावादी, जोश मलसियानी—जैसे तीनो शिष्य नज्मकी ओर आकर्षित हो चुके थे। लखनवी ग़ज़ल-गो उस्ताद 'सफी' भी नज्म लिखने लगे थे। दुर्गासहाय सरूर, ज्वालाप्रसाद वर्क़, जगमोहनलाल रवाँ, व्रजनारायण चकवस्त, इस्माइल मेरठी, नजर लखनवी आदि जोशो-खरोशके साथ नज्मके मैदानमे उतर आये थे।[1]

---

[1]नज्म आन्दोलनका विस्तृत इतिहास और नज्म-गो शाइरोंका परिचय एव कलाम हम 'शाइरीके नये दौर' नामक पुस्तकमें दे रहे हैं जो कि शीघ्र ही प्रेसमे दी जायगी। यूँ "शेरोशाइरी" में पृ० २६१-५६८ तक संक्षिप्त इतिहास और १७ प्रसिद्ध नज्म-गो शाइरोंका परिचय हम दे चुके हैं।

नज्म-आन्दोलनके इतने प्रसारके बावजूद भी गजलके परिस्तारो, प्रशसको और शाइरोका बहुत बडा समूह था। जिस तरह कि आर्यसमाजका धुआँधार प्रचार होनेपर भी सनातनियोका है। और परिस्तार भी किस गज़लके? जिसकी बागडोर दागके हाथमे थी। उनके पूर्व हुए मोमिन, गालिबकी क्लिष्ट, गम्भीर, गहरी तथा नासिख-स्कूलकी पेचीदा और लफ्फाजी शाइरीकी आम जनतातक रसाई नही थी।

अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा सर्वसाधारण उनकी शाइरीको समझने-की योग्यता ही नही रखते थे'। अधिकाश रगीन शाइरीके दिलदादा थे। ऐसी रुचिके लिए 'दाग'की और लखनऊकी शाइरी निहायत मौजूँ थी। यही कारण है कि उन दिनो कोई ऐसी महफिल न थी, जिसमे 'दाग' की गज़ले न गूँजती हो। कोई ऐसी तवाइफ नही थी, जिसे 'दाग' की गजले कठस्थ न हो। हर जवाँ-बच्चेकी ज़बानपर दागकी गज़लें थिरकती थीं। जिस मुशाइरेमें 'दाग' मौजूद हो, उस मुशाइरेमें किसी और शाइरका रग जमना नामुमकिन था। दाग़के अन्य समकालीनोका तो खैर ज़िक्र ही किया, स्वय हाली-जैसे पुख़्ता और मँजे हुए शाइरका रग'दाग़'के सामने न जम सका।

> हम जिसपै मर रहे है, वोह है बात ही कुछ और।
> आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ?

हालीका उक्त शेर जनताको 'दाग'के इस चुलबुले शेरके सामने पसन्द न आया—

'वर्त्तमानमे शिक्षाका इतना प्रसार और सुरुचि परिष्कृत होनेपर भी उच्च साहित्यके पाठक कितने है? सस्ते और घटिया किस्मके नाविलोकी ही अधिक-से-अधिक खपत है।

मै-ख़ानेके क़रीब थी, मस्जिद भलेको 'दाग़'।
हर-एक पूछता था कि "हज़रत इधर कहाँ ?"

और 'हाली' का यह शेर भी—

उसके जाते ही हुई क्या मेरे घरकी सूरत।
न वोह दीवारकी सूरत है न दरकी सूरत॥

'दाग' के इस शेरके सामने फीका पड गया—

बज़्मे-दुश्मनमें न खिलना, गुलेतरकी सूरत।
जाओ बिजलीकी तरह, आओ नज़रकी सूरत॥

केवल 'दाग'के ही दो हज़ारके करीब शिष्य उस समय मौजूद थे। 'अमीर मीनाई', 'जलाल' आदिके भी सैकड़ो शिष्य थे और ये सब समूचे भारतमें बिखरे हुए थे। सिर्फ दो-चारको छोडकर सभी इस किस्मकी शाइरीके आदी थे।

उधर नज़्मकी तरफ नये और पुराने लोग झुकते जा रहे थे। इधर गज़ल-गो शाइरोकी वही रफ्तार बेढंगी थी। ऐसी विषम परिस्थितिमें भी कुछ शाइरोने साहससे काम लिया। गिरते हुए झंडेको मजबूत हाथोंमें थाम लिया और मरणोन्मुख गज़लको वह जीवन-दान दिया कि आज वह पूरी आबो-ताबके साथ चमक रही है।

इन साहसी गज़ल-गो-शाइरोमे—१ सफी लखनवी, २ अज़ीज़ लखनवी, ३ आरज़ू लखनवी, ४ साकिब लखनवी, ५ शाद अज़ीमाबादी, ६ यगाना चंगेज़ी, ७ फानी बदायूनी, ८ असगर गोण्डवी, ९ हसरत मोहानी, १० जिगर मुरादाबादी, ११ सीमाब अकबराबादी और १२ जोश मलसियानी आदि विशेष उल्लेखनीय है।[1]

---

[1] इन सबका परिचय एव कलाम शेरो-सुख़न भाग २-३-४ मे दिया गया है।

हालीने दरअस्ल गजलका विरोध नहीं किया। उनका आशय यही था कि तत्कालीन (१६ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें) गजल-गोईमें-

गजलकी आवश्यक विशेषतायें

अस्वाभाविकता, कृत्रिमता, अश्लीलता आदि जो दोष आगये थे, उन्हे दूर किया जाय। उनका कथन था कि—"गजलमें जो इश्क़िया मजामीन बाँधे जाये, वे ऐसे जामा अलफाजमें अदा किये जाये जो दोस्ती और मुहब्बतके तमाम जिस्मानी और रूहानी ताल्लुकातपर हावी हो, और जहाँतक हो सके ऐसा कोई लफ्ज न आने पाये, जिससे माशूक औरत या मर्द मालूम हो सके। माशूक़को हमेशा मुजक्कर (पुल्लिग) बाँधना चाहिए, और अमरदपरस्तीके खयालात क़तई वन्द कर दिये जायें। हवीवके हुस्नो-जमालका इजहार वन्द किया जाय। अगर हवीव पर्दादार है तो कौन ऐसा वेवकूफ है जो अपनी वीवीके रान, तिल, वाल, वगैरहका हुलिया दूसरेको वताये और अगर हवीव वाजारी है तो उसका जिक्र करना अपनी ही रुसवाईका ढिढोरा पीटना है।" हालीके मतानुसार गजलमें यह तीन खूवियाँ अत्यन्त आवश्यक हैं—

१ सादगी,
२. स्वाभाविकता,
३. प्रभाव।

सादगी

जो शाइर प्रकृतिकी ओरसे कवि-हृदय लाया हो, उसे ही इस ओर अग्रसर होना चाहिए। जो व्यक्ति शाइराना दिलो-दिमाग लेकर नहीं जन्मा है, उसे शाइरी कदापि नहीं करनी चाहिए। उस्तादोकी कृपासे शाइरीका व्याकरण तो आ सकता है, परन्तु शाइरी कदापि नहीं आ सकती। अगर उस्तादोंके सिखायेसे शाइरी आ सकती तो मीर, मोमिन, ग़ालिबके उस्ताद उनसे वडे नामवर हुए होते। यह तो हृदयसे स्वय

उबलनेवाला झरना है, जो सदैव स्वच्छ, निर्मल बहता है। बनाये हुए तालाबोंमें वह बात कहाँ? उनमें कूड़ा भर जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है। जो स्वभावतः शाइर होगा, उसकी शाइरीमें सादगी एवं सरलता होगी, वह शब्दकी व्यूह रचना नही करेगा।

स्वाभाविकता

जो शाइर स्वाभाविकता एवं वास्तविकताके जितने समीप होगा, कृत्रिमता, तकल्लुफ़, अतिशयोक्तियोंसे जितना बचकर चलेगा, उतना ही सफल शाइर होगा।

प्रभाव

शेरमे प्रभाव एवं हृदयस्पर्शी क्षमता तभी आ सकती है, जब कि शाइरका हृदय भी शेरमें व्यक्त किये गये भावोंसे ओतप्रोत हो। 'मीर' जो ख़ुदा-ए-सुख़न कहलाते हैं और उर्दूके सभी नामवर और बड़े शाइरोंने उन्हे 'मीर' (सरदार, बड़ा) माना है, उनकी कामयाबीका राज़ यही था कि वे स्वभावतः शाइराना दिलो-दिमाग लेकर जन्मे थे। वे शौक़िया या ख्वायतन शेर नही कहते थे। अपितु जब वे कहनेपर मजबूर हो जाते थे, तभी वे शेर कहते थे। वे अपने पहलूमें एक ऐसा दर्दभरा दिल रखते थे, जिसकी टीस और चबक उन्हें जीवनभर बेचैन किये रही। उन्होंने इश्किया शाइरी वक़्त काटनेकी ग़रज़से, हज-यात्राके मार्गमें तफरीहन नही की, और न वज़ू करते हुए उन्हे इमामे-मैख़ाना बननेका तसव्वुर हुआ। बल्कि उन्होंने सचमुच इश्क किया था। वही हक़ीक़ते-इश्क और दास्ताने-ग़म उनके कलाममें प्रस्फुटित हुई है—

किस-किस तरहसे उम्रको काटा है 'मीर' ने।
तब आख़िरी ज़मानेमें यह रेख़्ता[1] कहा॥

---

[1]आरम्भमे उर्दूका और उर्दू-शाइरीका नाम रेख़्ता था।

हमको शाइर न कहो, 'मीर' कि साहब हमने।
दर्दे-ग़म कितने किये जमा तो दीवान बना॥

'मीर' को अपनी ही कौमकी एक लडकीसे इश्क हो गया था। उसको प्राप्त करनेके लिए उन्होने अनेक प्रयत्न किये और कष्ट उठाये। सामाजिक वन्धनोको तोडनेका साहस भी किया और पारिवारिक टक्करे भी ली, परन्तु सफलता न मिली। तमाम उम्र उसीकी चाहतमें काट दी और उस चाहतमें जो उन्हे व्यथा, टीस, वेदना, मिली, उन्होने 'मीर' को वह क्षमता और वाणी प्रदान की, जिनपर सदियोंसे शाइर सर धुनते आ रहे हैं। प्रायः सभी उत्तरवर्त्ती शाइरोने उनके अनुकरणका प्रयत्न किया, परन्तु वह वात पैदा न हुई जो 'मीर' में है। 'मीर, मीर है,। ज़ौकने जो व-हसरत कहा था—

न हुआ, पर न हुआ, 'मीर'का अन्दाज़ नसीव।
'ज़ौक' यारोंने वहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा॥

अगर ज़ोर मारनेसे गज़ल प्रभावक एवं हृदयग्राही वन सकती तो फिर 'मीर' जैसे दुवले-पतले शाइरके वजाय 'नासिख़'-जैसे पहलवान 'ख़ुदा-ए-सुख़न' कहलाते।

शाइरीमें सोज़ो-गुदाज़ (हृदयको द्रवित करनेकी क्षमता) वह चीज़ है जो शेरमें सम्मोहन शक्ति फूंकती है। यह वह विशेषता है जो वगैर दिल जलाये पैदा नही होती। वाज़ लखनवी-शाइरोका ख़याल है कि—मैयत, लाश, लहद, नज़अ, मौत, दर्द, गम, रंज, सदमा आदि शब्दोंके इस्तेमालसे शेरमें सोज़ो-गुदाज़ पैदा हो जाता है। मगर यह वहुत भ्रामक ख़याल है। केवल इन शब्दोंके प्रयोगमे लानेसे शेरमें सोज़ो-गुदाज़ पैदा हो सकता तो हर शाइर वा-आसानी 'मीर' वन वैठता। ज़ेवर-लिवास और शृंगारिक सामान ही अगर हसीन वना सकता तो कोई रईस औरत वदसूरत न रहती।

कलाममे सादगी, स्वाभाविकता और प्रभाव लानेके लिए यह ज़रूरी है कि शेर किसीके दबावसे, फर्माइशसे, या लालचवश नही कहना चाहिए। "अरबके मशहूर शाइर 'कैसर' से किसीने पूछा कि तूने शेर कहना क्यो छोड दिया? जवाब मिला—'जवानी जिससे उमग पैदा होती थी गुज़र गई। अब्दुल अज़ीज (पुत्र) जिससे सिलेकी तवक़्क़ोह थी, वह भी न रहा। अब कौन-सी चीज बाकी है जो शेर कहलाये?' गोया उसने इस बातका इशारा किया है कि जबतक दिलमे किसी क़िस्मका जोश और वलवला न हो, उस वक़्ततक शेर अजाम नही हो सकता। एक शाइरका कौल है कि बाज़ औकात मेरा यह हाल होता है कि दाँतको मसूडोसे उखाड़ना, मुझको ज्यादा आसान मालूम होता है, ब-निस्बत शेर कहनेके। यानी बगैर तबियतके और दिली जोशके शेर सरजाम नही हो सकता।"[1]

उर्दू-शाइरीके लिए यह बहुत बड़ा अभिशाप रहा है कि अधिकाश-शाइरोको बे-मनकी शाइरी करनी पड़ी है। कभी बादशाहो-नवाबो-रईसोकी फर्माइशोपर, कभी उनकी शादियों और खुशियोके मौकोपर लोभवश, कभी मुशाइरोंमें शिरकत करनेके लिए, अशआर कहने पड़े है। यही कारण है कि अधिकाश शाइरोकी गजले बेनमक और फीकी होती है। गजलमे एक-दो शेर ही ऐसा होता है जो मनपर असर करे, और बेमनकी शाइरी मनपर असर न करे तो इसमे आश्चर्यकी बात भी क्या है?

हर्ष है कि वर्त्तमान युगीन अधिकांश शाइर इस दोपसे बचनेका यथा-शक्ति प्रयत्न करते है और शेर जब अपनेको उनसे कहलवाता है तभी कहते हैं।

डालमियानगर
८ अगस्त १९५३ ई०

---

[1] हाली-मुकदमये-शेरोशाइरी उर्दू।

सिंहावलोकन
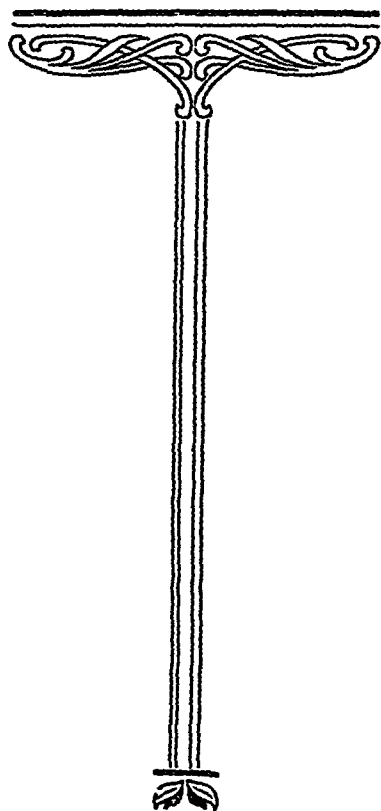
उत्तरार्द्ध

[१९०१ से १९५७ तक की ग़ज़लगोई

७

१. शाइरीमें परिवर्त्तनके कारण

२. नज्म और गज़ल

३. गज़लकी उन्नतिके कारण

४. गज़लपर एतराज़

५. गज़लका मर्म

६. ग़ज़लके रूपक

गुल-ओ-बुलबुल

साक़ी-ओ-मैखाना

हुस्न-ओ-इश्क

७. रंगे-तगज़्जुल

नई ग़ज़लगोई

८. पाक इश्क

९. महबूबका मर्त्तबा

१०. महबूबका जमाल

११. रोना-बिसूरना

१२. आशिक़-ओ-माशूककी तसवीर

१३. हिज्रे-यार

१४. यास-ओ-हिरमान

१५. रकाबत

१६. सामयिक घटनाएँ

उर्दू-शाइरीपर अँगरेज़ी-साहित्यका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अँगरेज़ीके प्रसारसे पूर्व उर्दू-शाइरीका एक मात्र माध्यम फ़ारसी-शाइरी था।

शाइरीमें परिवर्त्तनके कारण

उसका अनुकरण एवं पुराने विचारोंकी पुनरावृत्ति करते रहना ही तत्कालीन उर्दू-शाइरोंका एकमात्र लक्ष्य रह गया था। ग़ज़लका क्षेत्र सीमित था। इस सीमित क्षेत्रमें कोई कहाँतक उड़ान भरता? 'ग़ालिब'ने ग़ज़लमें पहले-पहल परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन किया और इसमें उन्हें बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभासे अनेक मौलिक विचारोंका ग़ज़लमें इस कौशलसे समावेश किया कि गज़ल नये आबो-तावके साथ चमकने लगी और अब वह केवल मानसिक अभिरुचिको तृप्त करनेके बजाय जीवनोपयोगी भी होने लगी।

ग़ालिबकी इस सूझ-बूझसे शाइरोंको एक नवीन दिशाका ज्ञान हुआ और ग़ज़लका क्षेत्र भी पहलेकी अपेक्षा काफी विस्तृत हुआ, किन्तु ग़ालिबकी प्रतिभाके लिए तो असीमित क्षेत्रकी आवश्यकता थी। स्वय अकेले वे कहाँतक इस क्षेत्रको विस्तृत करते रहते? लाचार उन्हे कहना पडा—

कुछ और चाहिए वुसअत मेरे बयांके लिए

यही वुसअत (विस्तीर्णता) उर्दू-शाइरीको अँगरेज़ी-साहित्यसे प्राप्त हुई। अँगरेज़ी-कविताएँ प्रेमके अतिरिक्त—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक, राष्ट्रीय आदि अनेक जीवनोपयोगी एवं सामयिक विचारोंसे ओत-प्रोत होती थीं। विश्वकी मुख्य-मुख्य घटनाओंको बहुत सुरुचिपूर्ण ढगसे अँगरेज़ी कविताओं-द्वारा व्यक्त किया जाता था।

अँगरेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय शाइरोंपर इन कविताओंका बहुत अधिक

प्रभाव पडा। वे भी उर्दू-शाइरीको परिपूर्ण बनानेके लिए प्रयत्नशील हो उठे।

अँगरेजी पढे-लिखे उर्दू-शाइर अँगरेज़ी कविताके विस्तारसे तो प्रभावित हुए, परन्तु सौभाग्यसे अँगरेज़ी-सस्कृतिसे कोई लगाव नही रखा। अँगरेज़ी-कविताका अन्ध-अनुकरण न करके, उन्होंने अपने समाज, देश, संस्कृति आदिको अपनी कविताका लक्ष्य बनाया। वे अपने देशके—वनो-पर्वतो, दरियाओ-वाटिकाओं, सुन्दर नगरों, भव्य इमारतोंकी ललित कलाओ एव मोहक दृश्योको नज्म करने लगे। अपने देशके पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुषोंके गुणोंका नज़्मों-द्वारा बखान करने लगे। कला केवल कला न रहकर अब वह जीवनोपयोगी बनने लगी।

उन दिनों भारतका वातावरण भी ऐसी शाइरीके लिए बहुत अनुकूल एवं उपयुक्त था। १८५७ ई० के विप्लवके बाद भारतके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रोमे एक उथल-पुथल-सी मची हुई थी। अँगरेज़ोंके भारतपर अधिकार जमा लेनेके कारण भारतीय सशकित हो उठे कि कही राज्यके साथ-साथ धर्म-मज़हब, सस्कृति एव तमद्दुनसे भी हाथ न धोना पडे। इन्हे सुरक्षित रखनेके लिए हिन्दू-मुसलमानोमें होड-सी लग गई। हिन्दुओंने विश्वविद्यालय और गुरुकुलकी नीव डाली तो मुसलमानोने यूनिवर्सिटी, मकतब तामीर किये। हिन्दू-मुसलमानों-द्वारा सभाएँ और अजुमने बनाई जाने लगी। पत्र एवं अख़बार निकाले जाने लगे। समाजोत्थान और राष्ट्रीय-चेतनाको उभारनेके लिए नज्मे और कविताएँ लिखी जाने लगी। 'हाली' ने मुसद्दस लिखकर मुसल-मानोके कौमी जज्बेको उभारा तो 'इक़बाल'ने देश-प्रेमका बीजारोपण किया। नौबतराय 'नज़र', दुर्गासहाय 'सरूर', ज्वालाप्रसाद 'बर्क़' आदि शाइरोंने पौराणिक, ऐतिहासिक, महापुरुषोंके जीवन नज़्म किये तो इस्माइल मेरठीने बालकोपयोगी नज्मे लिखी। अँगरेज़ी कविताओको उर्दू-नज़्मका रूप दिया। कोई प्राकृतिक दृश्योको नज्म करने लगा तो कोई भव्य नगरों और इमारतोकी कलाओको उजागर करने लगा।

अभीतक उर्दू-शाइरीमे वतनीयत (देशभक्ति) का वह शदीद जज्बा नही आया था, जिसकी वतनको अज़हद ज़रूरत थी। सौभाग्यसे उन दिनो बगालमे वंग-भगके विरुद्ध आन्दोलन छिड़ गया। इस आन्दोलनको सफल बनानेमें समूचा बंगाल प्राणपणसे जुट गया। क्रान्तिकारी दल सगठित किये गये। आग्नेय गद्य-पद्य-द्वारा लार्ड कर्ज़नकी 'वग-भग' नीतिकी तीव्र भर्त्सना की गई, और इस आन्दोलनको इतना बल दिया गया कि इसकी लपटें समूचे भारतमें फैल गई। बंगालियो-द्वारा लिखी गई बग-प्रेमकी कविताएँ जब अन्य प्रान्तोमें पहुँची तो अन्य भाषा-भाषी कवि उनसे काफी प्रभावित हुए और वे प्रान्तीय क्षेत्रसे निकलकर समूचे भारतको अपना देश समझने लगे और देश-प्रेम-सम्बन्धी नित-नई कविताएँ लिखने लगे। उर्दू-शाइरीपर भी इस आन्दोलनका काफी प्रभाव पडा और उसमे बहुत तेज़ीसे वतनीयतके जज्बे उभरने लगे। इस क्षेत्रमें प० बृजनारायण चकबस्तने आगे बढकर धौंसेपर चोट जमाई और देश-प्रेमके वे राग अलापे कि लोग वज्दमे आगये।

प्रथम महायुद्ध, रौलट-ऐक्ट, जलियानवालाबाग-गोलीकाण्ड और असहयोग आन्दोलनके कारण शाइरीने एक नया मोड लिया। इस इन्क़लाबी शाइरीके जन्मदाता हज़रत 'जोश' मलीहाबादी हैं। उन्होने देश-प्रेम, हिन्दू-मुसलिम ऐक्यपर सैकड़ो नज़्में लिखी। साम्प्रदायिक सघर्षोकी बडे तीव्र शब्दोमें भर्त्सना की। भारतके स्वतत्रता सम्बन्धी प्रत्येक पहलूपर उन्होंने इतना लिखा कि भारतका कोई भी कवि उनकी हमसरी नही कर सका! 'सीमाब' अकबराबादी, सागर निज़ामी आदिने भी इन विषयोपर बहुत काफ़ी लिखा। किसान-मज़दूर, पूंजीपति, मुफलिसकी ईद, गरीबकी दीवाली, आदिपर बहुत काफी लिखा गया।[1]

द्वितीय महायुद्धके दिनोमे—ब्लेकआउट, कण्ट्रोल, राशनिंग, परमिट,

---

[1]विशेष परिचय 'शाइरीके नये दौर' मे मिलेगा।

२०५९

चोर-बाजारी, क़हते-बंगाल, एटमबम, आज़ाद हिन्द फौज, सुभाषचन्द्र बोस, लालकिला, हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन स्टालिन, अन्वी लड़ाई, १९४२ के स्वतन्त्रता-सग्राम आदिपर न जाने कितनी नज़्में लिखी गईं और १९४७ के बाद तो नज़्मोका एक सैलाब-सा आ गया। भारत-विभाजन, साम्प्रदायिक-हत्याकाण्ड, हिजरत, शरणार्थी, करफ़्यू, दरिन्दे, जब इन्सान वहशी बन गया, जश्ने-आज़ादी, आज़ादीके बाद, सुबहे-आज़ादी, वतनमें आख़िरी रात, आदि हज़ारों नज़्मे कही गईं और कही जा रही है।[1]

इन नज़्मगो शाइरोमे पुरातनवादी, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, काग्रेसी, साम्यवादी, समाजवादी, मुसलिमलीगी आदि सभी विचार-धाराओंके हैं और अपने-अपने ढंगसे अपनी भावनाओको व्यक्त करते रहते हैं।

नज़्म और ग़ज़ल

इस दौरमें नज़्मकी बाढ़ इतनी द्रुतगतिसे आई कि मालूम होता था, गज़ल तिनकेके समान बह जायगी, लेकिन वह बहनेके बजाय उत्तरोत्तर विकसित एवं उन्नत होती गई।

एक-दो वर्ष पूर्वतक नज़्मोंने ख़ूब ज़ोर पकड़ा, किन्तु अब वह आँधी थम गई है और गज़ल पूरे आबो-ताबके साथ चमक रही है। इसका कारण यही है कि छोटी-से-छोटी बातको नज़्ममें बहुत बढ़ा-चढाकर विस्तारसे व्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत गज़लमें बडी-से-बड़ी बातको एक-दो शेरोमे समो दिया जाता है। नज़्मगो शाइर कुएँको तालाब बनाते है; गज़लगो शाइर गागरमें सागर भरते है।

सक्षेपमें यूँ समझिए कि गज़ल सूत्र है, नज़्म भाष्य है। ग़ज़ल कहानी है, नज़्म उपन्यास है। गज़ल सकेत है, नज़्म स्वीकृति है। ग़ज़ल सूक्ति है, नज़्म काव्य है। ग़ज़ल हृदयकी अनुभूति है, नज़्म शाइरीका प्रदर्शन है।

नज़्मोमे अधिकतर सामयिक घटनाओं, तत्कालीन रीति-रिवाजो

---

[1] इन सबका विस्तृत परिचय 'शाइरीके नये मोड' में मिलेगा।

आदिका उल्लेख रहता है। इसलिए उसमें स्थायित्व नही आने पाता। अक्सर देखा जाता है कि जो नज्म एक समयमें इस सिरेसे उस सिरेतक आम हो जाती है, वही चन्द दिनोमें विस्मरण कर दी जाती है। इसके विपरीत गजलमे जो भी कहा जाता है, वह रंगे-तग़ज्जुलमें कहा जाता है; जिससे कि समय और रुचिके अनुसार लुत्फ उठाया जा सकता है। सामयिक घटनाओका उल्लेख समयपर तो इंजेक्शनका काम करता है, परन्तु समयके साथ धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम हो जाता है। बग-भंग, रौलेट-ऐक्ट, जलियानवाला बाग, असहयोग-आन्दोलन, बृटिश-शासन-विरोधी नज्मोंको आज कौन पूछता है? पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक, सुधार आदि आन्दोलन सम्बन्धी और नेताओकी प्रशस्तियोमें लिखी गई नज्मोका युग समाप्त हो गया है। दूर क्यो जायें, द्वितीय महायुद्धके प्रारम्भसे १९५२ ई० तक—हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, राशनिंग, चोर बाजारी, भारत-विभाजन आदिपर न जाने कितनी नज्मे लिखी गई, परन्तु आज वे इतनी जल्दी आउट आफ डेट हो गई है कि उनके रचयिता भी उन्हे सुनानेमे सकोचका अनुभव करते है। हालाँ कि जब लिखी गई थी, तब उन्हीका चर्चा चारो तरफ था।

किसी भी तरहके प्रचारके लिए नज्म अत्यन्त उपयोगी साधन है, उसका प्रभाव तुरन्त होता है, लेकिन आवश्यकतापूर्ण होते ही उसका असर भी समाप्त हो जाता है। गजल, आन्दोलन आदिके लिए विशेष उपयोगी नही। उसका महत्त्व सुख-शान्तिके दिनोमें मालूम होता है।

नज्मके इतने प्रबल वेगके समक्ष भी गजल पाँव जमाये खड़ी रही और पूरे जाहो-जलालके साथ जलवागर रही, इसका कारण यही है कि वर्त्तमान

ग़जलकी उन्नतिके कारण

ग़जलकी बागडोर जिनके हाथोमें आई, उनका व्यक्तित्व साहित्यिक समाजमें महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित था। वे उन पुराने उस्तादोंके जानशीन थे, जिनके झडे बज़्मे-अदबमे गड़े हुए थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व ऐसा था कि नज्मगो शाइर भी उनका आदर एव सम्मान

करते थे। उनमें-से बहुत-से नज़्मगो शाइर या तो उनके गुरु-भाई थे, या उनके शिष्य थे। परस्पर संघर्षका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। नज़्म और गज़ल दो महत्त्वपूर्ण कला थी। साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेके लिए अपनी-अपनी रुचिके अनुसार किन्हींने नज़्मको और किन्हींने गज़लको अपना लिया।

वे नज़्मगो शाइर, जिनकी शाइरीका प्रारम्भ गज़लगोईसे हुआ था और जो गजलगो उस्तादोंके शिष्य थे, नज़्मोंके साथ गज़लें भी कहते रहे। इक़बाल, चकबस्त, सीमाब, जोश मसलियानी, सफ़ी लखनवी, नज़र लखनवी, दत्तात्रेय कैफ़ी, बर्क़ देहलवी, असर लखनवी, हफ़ीज़ जालन्धरी, सागर निज़ामी, रविश सद्दीकी आदि नज़्म और ग़ज़ल दोनों ही कहते रहे। इसीतरह अधिकांश तरक़्क़ीपसन्द एवं प्रगतिशील नवयुवक शाइर भी गज़ल कहते रहते हैं। हालाँकि उनको ख्याति नज़्मगोईके कारण मिली।

वर्त्तमानयुगीन ज़िम्मेवार गजलगोशाइरोंने युगानुसार गज़लमें अनेक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन किये। वे धीरे-धीरे अपना लबो-लहजा बदलते गये, सुधार करते गये! दृष्टिकोणको व्यापक और उदार बनाते गये। समयानुसार नये-नये भाव समोते गये। परिणाम इसका यह हुआ कि गज़ल आज पूरे आबो-ताबके साथ चमक रही है।

गज़लपर अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि उसमें हुस्नो-इश्क़, रिन्दो-मैख़ाना, और गुलो-बुलबुलकी दास्तानके अतिरिक्त न तो तत्कालीन घटनाओंका उल्लेख किया जाता है, न सामयिक विचारोंको महत्त्व दिया जाता है, और न अन्य लोकोपयोगी भावोंका समावेश होता है।

ग़ज़लपर एतराज़

ग़ज़लगो शाइर भरी बहारमें बैठे हुए बहारको रोते रहते हैं। देशमें चाहे आग लग रही हो, चाहे क्रान्तियाँ प्रस्फुटित हो रही हों, चाहे विप्लवोंकी आँधियाँ आ रही हों, चाहे भुखमरी और महामारियाँ ताण्डव नृत्य कर

रही हो, गजलगो शाइर तब भी अपनी धुनमें मस्त मैख़ानेमे झूमते हुए, वीरानोमे मजनूनावार घूमते हुए और गुलशनोमे भी रोते-विसूरते हुए नज़र आयेंगे। ऐसे ही शाइरोसे खीजकर मौ० मुहम्मदहुसेन आज़ाद यह कहनेपर मजबूर हुए थे—

हैफ आता है कि खोई उम्र मजमूँ बाँध-बाँध।
ऐसी बन्दिशसे तो बेहतर था कि छप्पर बाँधते॥

उक्त आक्षेप किन्ही गजलगो शाइरोपर चस्पाँ हो सकते है, परन्तु सभीके लिए इसतरहकी धारणाएँ उचित नही, और अब तो गजलका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण होता जा रहा है और उसमे नित नये परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन होते जा रहे है।

ग़ज़लका मर्म

ग़ज़लगो शाइरोने प्रायः सभी आवश्यक विषयोपर प्रकाश डाला है। जीवन-सम्बन्धी हर तथ्यपर उनकी दृष्टि रही है। बकौल शख्से—

यह और बात है दुनिया उन्हें न पहचाने

खेद है कि सर्वसाधारण उनके इन जौहरोंसे अनभिज्ञ है। सर्वसाधारण तो खैर सर्वसाधारण है, वे उन्हे परखनेको दिव्यदृष्टि कहाँसे लाते? आश्चर्य तो इसका है कि अच्छे-अच्छे सुख़न-फहम भी गजलका वास्तविक मूल्य न आँक सके। आजकी बात जाने दीजिए। पुराने ज़मानेमे खुदाए-सुख़न 'मीर'के समकालीनोमें—सौदा, दर्द, सोज़, और नौजवानोमे—कायम, यकीन, असर, तावाँ, बेदार, ज़िया, हसन, बयान, अफसोस—जैसे ख्यातिप्राप्त शाइर मौजूद थे। दिन-रात मुशाइरोकी धूम रहती थी। फिर भी 'मीर'को यह कलक रहा कि उनके जौहरको परखनेवाले जौहरी न मिले। इस कलक़को उन्होने पचासो बार अनेक तरहसे व्यक्त किया है—

किस-किस अदासे रेख़्ते[1] मैने कहे वलेक[2]—
समझा न कोई मेरी ज़बाँ इस दयारमें[3]॥

'मीर' का उक्त शिकवा बेजा नही है। गज़लके शेरका वास्तविक आशय समझनेके लिए उसीके अनुकूल दिलो-दमाग और वातावरण होना चाहिए। शाइरने जिस वातावरणसे प्रभावित होकर या जिस लक्ष्यको लेकर शेर कहा है। यदि उसे पढ़ते समय पाठकके मन एवं मस्तिप्ककी स्थिति भी तदनुरूप होगी तो उस शेरके जौहर पूरे आबोतावके साथ जलवा-गर हो जायेगे, अन्यथा जैसे हज़ारों वस्तुएँ जीवनमे रोज़ाना नज़रोंसे गुज़रती रहती है, वैसे ही वह भी गुज़र जायगा और हम उसके वास्तविक तथ्यसे लाभान्वित न हो सकेगे।

मेरी नजरोसे सैकड़ो शेर रोज़ गुज़रते है। मीर-ओ-ग़ालिव आदिके दीवान न जाने कितनी वार पढे है। जव भी पढ़े है, उनमे नई-नई ख़ूवियां नज़र आई है। पढ़ते समय जिस स्थितिमें मन एवं मस्तिष्क होता है, उसीतरहके शेर आँखोमे चमकने लगते है। 'ग़ालिव'के इसी शेरको लीजिए—

गो हाथमें जुम्विश नहीं, आँखोंमें तो दम है।
रहने दो अभी साग़रो-मीना मेरे आगे[4]॥

उक्त शेर व-ज़ाहिर तो कतई रिन्दाना है, और शेरके वाह्य अर्थसे आम आदमियोके मनोंमे सम्भवतः यही भाव उदित होंगे कि शाइर कितना

---

[1]उर्दू-शाइरीका पहला नाम; [2]लेकिन; [3]ससारमें;
[4]हाथमे सागर एवं मीना उठानेकी शक्ति नही रही तो न सही, अभी आँखोमे तो देखनेकी सामर्थ्य शेष है। पी नही सकता, मगर उन्हे देखनेका तो आनन्द उठा सकता हूँ। इसलिए सागर एवं मीना सामने ही रखे रहने दिये जायें।

हविस परस्त एवं पियक्कड हूँ कि पीनेकी सामर्थ्य न रखते हुए भी उसके मोहमें लिप्त हूँ। इस शेरको 'शेरोशाइरी' में देते हुए भी मैं इसके अन्तरंगसे परिचित था; परन्तु आप बीती घटनाने जो शेरका लुत्फ दिया, वह बयानसे बाहर है।

१४ अक्तूबरसे १५ दिसम्बरतक खाँसीकी पीड़ाके कारण मुझे चारपाईपर पड़ना पडा। मौत जब बार-बार आकर झाँकने लगी तो डाक्टरो और हितैपियोने लिखने-पढनेकी सख्त पाबन्दी लगा दी। शेरोसुखनके २, ३, ४ भाग इलाहाबाद ला जर्नल प्रेसमे कम्पोज़ हो चुके थे। उनके प्रूफ़की मैं बहुत उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा था। अपने जीवनकालमे ही उनके छपवानेकी लालसा मुझे कुरेद-कुरेदकर खाये जा रही थी। रुग्ण-शैयापर पडा हुआ बहुत बे-सब्रीसे रोज़ाना प्रूफ आनेका इन्तज़ार करता रहता था। प्रतीक्षा करते हुए जब कई रोज़ हो गये, तब मैंने ज्ञानपीठके मैनेजर श्री बाबूलालजी फागुल्लसे पूछा तो उन्होने हिचकिचाते हुए कहा कि "प्रूफ तो कई रोज़से आये पड़े है, परन्तु डाक्टरके परामर्शानुसार आपको नही दिखाये गये है।" मैंने कहा—"कौन कम्बख्त उन्हे पढना चाहता है, मगर भगवान्‌के वास्ते तुम उन्हे मेरे सामने मेज़पर तो रख दो ताकि मैं उन्हे पड़ा-पडा निहार तो सकूँ।" फागुल्लजीने प्रूफ लाकर रखे ही थे कि कई हितैपी बन्धु आ गये। उन्होंने जो प्रूफ मेरे पास देखे तो फागुल्लजीको उठा लेजानेके लिए इशारा किया। मैंने रखे रहनेकी मिन्नत की, तो बोले—"जब प्रूफ पढनेकी इजाज़त नही है तो सामने रखनेसे क्या लाभ?" हितैपियोंकी नासहाना नसीहत सुनकर मैं तडप उठा और बेसाख़्ता ग़ालिबका उक्त शेर मुँहसे निकल पडा। आँखें डबडबा आई और मन भारी हो गया। हितैपियोने मेरे मनकी व्यथाको समझा और प्रूफ वहीं पडे रहने देकर मुझे मानसिक शान्ति पहुँचाई। इतने दिनो बाद मैं उस रोज़ ग़ालिबके उक्त शेरके अभिप्रायको महसूस कर सका, और यह भी यक़ीन नहीं कि अब भी ठीक-ठीक समझ पाया हूँ।

ग़ज़ल इतनी भावपूर्ण कोमल कला है कि उसके वास्तविक रहस्यको पारखी दृष्टि ही जान सकती है। उसकी अपनी निजी भाषा, भाव, उपमा, अलकार और शैली है। अपने भाव व्यक्त करनेका अपना निजी लबो-लहज़ा और ढंग है।

ग़ज़लका वार पत्थरकी तरह सीधा न होकर दुशालेमें लिपटा हुआ होता है। गज़लगो शाइर ख़ुदाकी बात कहे या शैतानकी, आध्यात्मिकताकी गुत्थियाँ सुलझाये या आधिभौतिकताकी, तात्त्विक विवेचन करे या राजनीतिक घात-प्रतिघातका वर्णन, उसे सब गज़लकी सीमाके अन्तर्गत कहना पड़ता है। सीमाके बाहर कहा हुआ शेर गजलका शेर नही कहला सकता। वह तग़ज़्ज़ुल (गज़लगोई) से गिरा हुआ शेर होगा। गज़लमे सीधे भाव व्यक्त न करके पर्देमें कहे जाते है।

इक आफ़ते-ज़माँ है वह 'मीर' इश्क़-पेशा।
पर्देमें सारे मतलब, अपने अदा करे है॥

ग़ज़ल संकेतात्मक शाइरी है। चाहे उसमें कैसे ही भाव व्यक्त किये जायें; वे सब गुलो-बुलबुल, साक़ी-ओ-मैख़ाना एव हुस्नो-इश्क आदिके पर्देमें कहे जाते हैं। बक़ौल 'ग़ालिब'—

हरचन्द हो मुशाहद-ए-हक़की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है, बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर[1]॥

और इन बादा-ओ-साग़रकी आड़में कहे हुए भावोंको समझना आसान नही—

---

[1]ईश्वरीय चर्चा (मुशाहद-ए-हक़की गुफ्तगू) करनेके लिए भी शराब और सुराही जैसे शब्दोंका प्रयोग अनिवार्य है। ग़ज़लमे उसकी निश्चित उपमाओंका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है।

'मीर' साहबका हर सुखन है रम्ज़[1]।
बे हक़ीकत है शेख़ क्या जाने॥

जो बात कही जाय, वह रंगे-तग़ज्जुलमें कही जाय, यही ग़ज़लगो शाइरका बहुत बडा कमाल है। यूँ तो अध्ययन एवं अभ्याससे और गुरुकी अनुकम्पासे जो चाहे, वही व्यक्ति गज़ल कह सकता है; परन्तु तग़ज्जुल जिस भावपूर्ण एवं संकेतात्मक कलाका नाम है, उसमें सफलता प्राप्त करना हँसी-खेल नही। बकौल 'मीर'—

है नज़्मका सलीका हरचन्द सबको लेकिन—
जब जाने कोई लावे यूँ मोतीसे पिरोकर॥

मोतीसे पिरोनेकी कलामें दक्षता प्राप्त करनेके लिए अपनेको डुबोना और खपाना पड़ता है। गज़ल हुस्नो-इश्क एवं दर्दो-ग़मकी शाइरी है। ग़ज़लका शेर प्रभावोत्पादक तभी होगा, जब वह उसीके अनुरूप दिलो-दमाग़ रखनेवाले शाइरने कहा होगा।

मीर— 'मीर' तब गर्म-सुखन कहने लगा हूँ मैं कि इक उम्र।
जूँ शमअ़ सरे-शाम ता-सुबह जला[2] हूँ॥

क्या करूँ शरह ख़स्ता जानीकी?
मैंने मर-मरके ज़िन्दगानी[3] की॥

आबलेकी-सी तरह, ठेस लगी, फूट बहे।
दर्दमन्दीमें गई, सारी जवानी उसकी॥

---

[1] संकेत, भेद पेचीदा बात है।

[2] जीवनका बहुत अधिक अंश मोमबत्तीकी तरह रात-दिन जलता-गलता रहा है, तब कही हृदयको स्पर्श करनेवाली कविता करने लगा हूँ।

[3] अपने व्यथापूर्ण जीवनको विस्तारसे क्या कहूँ। केवल इतना काफी है कि मैंने मर-मरके जीवन व्यतीत किया है।

इश्क़में खोये जाओगे तो बातकी तह भी पाओगे।
क़द्र हमारी कुछ जानोगे, दिलको कहीं जो लगाओगे॥

आज़ार खींचनेके मज़े आशिक़ोसे पूछ।
क्या जाने वोह कि जिसका कहीं दिल लगा न हो॥

हृदय प्रेमसे ओत-प्रोत हो, मन इतना सवेदनशील हो कि दीन-दुखियो-को देखकर द्रवित हो उठे। जीवनभर शमअ़की तरह गलता रहे, तब कही कलाम प्रभावोत्पादक बन पाता है। रंग और तूलिकाके सहारे चित्र तो बन जाता है, परन्तु मुंह बोलती तसवीर नही बन पाती। यह तभी बन पाती है जब चित्रकार अपनेको खो और डुबो देता है।

दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर'।
आहो-नाले असर करें क्योंकर॥

गुलो-बुलबुल, साकी-ओ-मैखाना, हुस्नो-इश्क आदि रूपकों-द्वारा गज़लका निर्माण होता है। यही गज़लके प्राण है। इनको बगैर समझे गज़लका वास्तविक मर्म हृदयंगम नही हो सकता। इन रूपकोंसे ही गजलके शेरमें रगे-तगज्जुल आता है। इन्ही रूपकोंसे सोज़ो-गुदाज़ पैदा होता है। यही हृदयतंत्रीको झंकृत कर देनेकी उमे शक्ति देते है। यही उसमें शेरियत लाते है।

ग़ज़लके रूपक

गुलो-बुलबुल

गुलो-बुलबुलकी आड़ लेकर गजलगो शाइरोंने राजनीतिक दाव-घातों, शोषितो, पीड़ितों आदिके सम्बन्धमें इस ख़ूबीसे कहा है कि सब कुछ कहनेपर भी वे गिरफ़्तमें नही आसकते। गुल, बुलबुल, गुलशन, बागवाँ, सैयाद, गुलची, कफस, आशियाँ यह सब रूपक[1] है, जिन्हे ग़ज़लगो शाइर अपने मनोभाव व्यक्त करनेके लिए उपयोग करते है। जो शाइर इन

---

[1]इन सब रूपकोपर शेरोशाइरी, पृ० ८०-९३ मे विस्तारसे प्रकाश डाला गया है।

रूपकोंके गूढ अर्थसे अपरिचित होते हुए भी शेर कहते हैं, वह स्वयं भी उपहासास्पद होते हैं और शाइरीको भी दूषित करते हैं। ऐसे ही शाइ-रोंकी बदौलत ग़ज़ल बदनाम हुई। एक पुराने लखनवी शाइरका शेर है—

बाग़में जाते तो हो पहने गुलाबी टोपी।
बुलबुले-बे-अदब आ बैठे न ऐ जाँ सरपर॥

यह बेचारा शाइर इतना ही जानता था कि बुलबुल गुलाबके फूलपर आशिक रहती है। अतः उसकी कल्पनाने ज़ोर मारा तो वह केवल इतनी उड़ान भर सका कि बुलबुल फूलके धोकेमें गुलाबी टोपीवालेके सरपर भी बैठ सकती है।

वह ग़रीब जब गज़लके अन्तरगसे और उसके रूपकोंके वास्तविक भावोंसे परिचित ही न था, तब इसके सिवा वह कहता भी क्या? अब रगे-तगज़्ज़ुलके चन्द अशआर दिये जाते हैं—

दुबले-पतले महात्मा गाँधी जब बन्दी किये गये तो देशमें एक मातम-सा छा गया था। उस भावनाको 'साक़िब' लखनवीके शब्दोंमें यूँ व्यक्त किया जा सकता है—

कहनेको मुश्ते-परकी[1] असीरी[2] तो थी, मगर—
ख़ामोश हो गया है चमन बोलता हुआ॥

बन्दी-गृहमें पड़े हुए भी यदि शत्रुका कोई भेद मालूम हो जाय तो जैसे भी बने उसे देशके कर्णधारोतक पहुँचा देना चाहिए—

साक़िब— किसीका रंज देखूँ यह नहीं होगा मेरे दिलसे।
नज़र सैयादकी झपके तो कुछ कह दूँ अनादिलसे[3]॥

---

[1]मुट्ठीभर परोंकी; [2]गिरफ्तारी; [3]बुलबुलोंसे।

सोनेके पिंजरेमें पराधीन जीवन बितानेकी अपेक्षा रूखी-सूखी खाकर झोंपड़ेमे रहना हज़ार दर्जे बेहतर—

आरज़ू— ऐ 'आरज़ू'! इस बाग़में फूलोंके क़फ़ससे[1]।
बहतर हमें वोह अपना नशेमन[2] कि है ख़सका[3]॥

शरीफो एवं लुच्चोको एक लाठी हाँकनेवाला शासक अन्धा नहीं है तो और क्या है।

आरज़ू— अदू[4] न थी, मगर अन्धी ज़रूर थी बिजली।
कि देखे फूल, न पत्ते, न आशियाँ, देखा॥

देशकी सुख-समृद्धिका उपयोग करनेवाले देशके दुर्दिनोंमे भी अपने देश-प्रेमका परिचय दे—

जिगर— काँटोंका भी हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

हमारी आँखोंके सामने हज़ारो देश-भक्त गोलीसे भून दिये गये, फाँसी चढ़ा दिये गये और हम अशक्त बने सब कुछ देखते रहे। कैसी दयनीय स्थिति थी—

सफ़ी— ज़ोर ही क्या था जफ़ा-ए-बाग़बाँ[5] देखा किये।
आशियाँ उजड़ा किया हम नातवाँ[6] देखा किये॥

चन्द शेर बग़ैर टीका-टिप्पणीके दिये जा रहे है। सुविधाके लिए उनके ऊपर शीर्षक लगा दिये है—

अकर्मण्यता

असर— यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने?

---

[1]पिंजरेसे; [2]घोसला; [3]घास-फूसका; [4]शत्रु; [5]मालीका अत्याचार; [6]क़मजोर।

सामर्थ्यके अनुसार

आनंदनारायण मुल्ला—अपनी कूवत[1] आजमाकर अपने बाजू[2] तोलकर।
आर्शि-ए-हस्तीमें[3] उड़ना है तो उड़, पर खोलकर॥

सहृदयता

महशर— तमाम उम्र इसी एहतयातमें[4] गुजरी।
कि आशियाँ किसी शाखे-चमनपै बार[5] न हो॥

सुखमे दुःख छिपा है

जुर्शीद— कफस दूर ही से नजर आ रहा है।
कयामत है अपनी बुलन्द आशियानी[6]॥

क्षण-भंगुर वैभव

मीर— कहा मैंने "कितना है गुलका सबात[7]"?
कलीने यह सुनकर तबस्सुम[8] किया॥
देर[9] रहनेकी जा नहीं यह चमन।
बूए-गुल हो, सफीरे-बुलबुल हो॥

यह कृपालुता ?

अदीब सहारनपुरी—कौन इस तर्जे-जफाये[10]-आसमांको दाद दे?
बाग़ सारा फूंक डाला, आशियाँ रहने दिया॥

---

[1]ताकत; [2]बाहुओंको; [3]जीवन-आकाशमें, [4]सावधानीमें, [5]बोझ; [6]ऊँचाईपर घोंसला बनाना; [7]निवास, स्थायित्व; [8]मुसकान, [9]स्थायी, अधिक, [10]अत्याचारके ढंगकी।

साक़ी-ओ-मैख़ाना

गज़लमे वर्णित, शराब रिन्द, मैख़ाना, साकी आदिसे जनसाधारण वास्तविक मद्य-प्रसारका तात्पर्य समझते हैं। उन्हे क्या मालूम कि जिन गज़लगो शाइरोने कभी शराब छूई तक नही, वे भी इस विषयपर जीवन-पर्यन्त लिखते रहे। क्योकि यह सब भी गज़लके अत्यन्त आवश्यक रूपक हैं। इनके बगैर काम ही नही चल सकता। यहाँ हम चन्द शेर बगैर किसी टिप्पणीके पेश कर रहे हैं। आशा है उनके शीर्षकोसे भावोंके समझनेमें कोई कठिनाई न होगी।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

मुल्ला— कभी तेरो-कलमसे भी मिटे हैं तिफ़रके[1] दिलके।
मिटाना है तो पहले रखके सागर दरमियाँ समझो॥

लालची

रियाज़— मक़सूद[2] है कोई न पिये वोह हरीस[3] हूँ।
वाइज़[4] हुआ, मैं रिन्द क़दहख़्वार[5] क्या हुआ॥

दानीसे

अदम— ✓ शिकन न डाल जबींपर शराब देते हुए। ✓
यह मुसकराती हुई चीज़ मुसकराके पिला॥

आलोचकोसे

दिल— तेरी फ़र्दे-अमल[6] हो पाक[7] इस दुनियामें ऐ वाइज़[8]!
कोई पीता है पीने दे, कहीं ढलती है ढलने दे॥

---

[1]वैमनस्य; [2]उद्देश्य, तात्पर्य, इच्छा; [3]लालची, ईर्ष्यालु; [4]व्याख्यान-दाता; [5]मद्यप; [6]कर्मोंकी तालिका; [7]पवित्र, उज्ज्वल; [8]नसीहत देनेवाले।

शासन-व्यवस्थापकोंसे

मुल्ला— निज़ामे-मैकदा[1] साक़ी! बदलनेकी ज़रूरत है।
हज़ारों हैं सफ़ें[2] जिनमें, न मैं आई, न जाम आया॥

वुसअ़ते-बज़्मे-जहाँमें[3] हम न मानेंगे कभी।
एक ही साक़ी रहे, और एक पैमाना रहे॥

ये छिद्रान्वेषी

ताबिश सुलतानपुरी—जहाँवाले न देखें इसलिए छुप-छुपके पीता हूँ।
ख़ुदाका ख़ौफ कैसा? वोह तो ऐबपोश[4] है साक़ी!

कलके ढोंगी, आज नेता

मीर— मस्जिदमें इमाम[5] आज हुआ, आके वहाँसे।
कलतक तो यही 'मीर' ख़राबात-नशीं[6] था॥

चेतावनी

मीर— ऐ वोह कोई जो आज पिये है शराबे-ऐश।
ख़ातिरमें रखियो कलके भी रंजो-ख़ुमारको॥

हुस्न-ओ-इश्क़

ग़ज़ल, हुस्नो-इश्क और सोज़ो-गुदाज़ (व्यथा-वेदना) की शाइरी है। जिन ग़ज़लगो शाइरोंको कभी किसीपर मरनेकी सआदत मयस्सर

---

[1]मधुशालाका प्रबन्ध; [2]पंक्तियाँ, [3]संसारके व्यापक क्षेत्रमें, [4]अपराधोंपर पर्दा डालनेवाला, पाप ढकनेवाला; [5]नमाज़ पढ़ानेवाला; [6]मधुशाला-निवासी।

न हुई, उनको भी कूचये-हुस्नकी नग्मासराई करना लाज़िमी होती है। क्योंकि ग़ज़लका निर्माण ही हुस्नो-इश्क़के तन्तुओंसे हुआ है।

गज़लके वाह्य रूपसे ऐसा मालूम होता है कि गज़लगो शाइर कूच-ए-महबूब (प्रेयसीकी गली) मे फटेहाल दीवानावार घूमते रहते है। माशूकके दरवानोंसे पिटते है, ज़लीलो-ख्वार होते है; मगर व्हाँसे टलनेका नाम नही लेते। महबूब (प्रेयसी) उनकी हरकतोंसे नालाँ है; मगर वे ख़तोंका ताँता बाँधे रखते है। ख़त ही नही भेजते, दरवानकी निगाह बचाकर स्वय भी मकानमे कूद जाते है। माशूककी गालियाँ खाते है, दुतकारे जाते है, मार सहते है, घायल होते है, मगर अपनी हरकतोसे वाज़ नही आते। गोया जलीलो-ख्वार बने रहनेके अतिरिक्त उन्हे कोई अन्य कार्य नही है। न उनके पत्नी है, न बच्चे है, न गुरुजन है और न उनके पास कोई लोकोपयोगी कार्य है।

लेकिन शेरका अतरग देखिए तो कुछ और ही आलम नज़र आता है। यह नही भूलना चाहिए कि गज़लगो शाइर हर बात इशारेमे और पर्देमे बयान करता है। कभी वह विश्व-वेदनाको अपनी वेदना बनाकर गमे-जानाँके पर्देमे पेश करता है[1] और कभी अपनी वेदनाको विश्वभरकी वेदना समझकर गमे-दौराँके रूपमे पेश करता है।[2] यानी जो वह ससारमे देखता और सुनता है, वह इश्को-हुस्नके पर्देमे बयान करता है। बकौल 'मीर'—

---

[1]जो ग़म हुआ, उसे ग़मे-जानाँ बना लिया

यानी सासारिक आपदाएँ किसी भी कारणसे आये, वे सब इश्ककी वजहसे आईं। यही समझकर उसका उल्लेख गज़लमे किया जाता है।

[2]हमपर अकेले ही यह आपदाओंका पहाड नही टूटा है, अपितु समस्त मानव-समाज इसके नीचे पड़ा कराह रहा है। उन सबका दु.ख दूर होनेमे ही अपना कल्याण है। यही भावना गमे-दौराँ है।

कहिएगा उससे किस्स-ए-मजनूँ।
यानी पर्देमें ग़म सुनाइयेगा॥

अर्थात्—ग़ज़लगो सब बातें रूपकों-द्वारा पर्देमें कहता है। चन्द उदाहरण देखिए—

बादशाहत मिटनेपर मुग़लिया सल्तनतका मिट जाना, इतनी बड़ी घटना है कि उसपर नज़्मगो शाइर पोथा लिख सकता है, परन्तु ग़ज़लगो शाइरको तो एक ही शेरमें सब कुछ व्यक्त करना चाहिए और वह भी रंगे-तग़ज़्ज़ुलमें। मुग़लिया सल्तनतके मिटनेसे, शाहज़ादों और शाहज़ादियोंके इधर-उधर भटकनेसे और दिल्लीके उजड़नेसे प्रभावित होकर 'मीर'ने अपनी कई ग़ज़लोंमें इस तरहके भाव व्यक्त किये हैं—

नाम आज कोई याँ नहीं लेता है उन्होंका।
जिन लोगोंके कल मुल्क यह सब ज़ेरे-नगीं था॥

था मुल्क जिनके ज़ेरे-नगीं साफ मिट गये।
तुम इस ख़यालमें हो कि नामो-निशाँ रहे॥

सब्ज़ाने-ताज़ा-रौकी[1] जहाँ जलवागाह[2] थी।
अब देखिए तो वाँ नहीं साया[3] दरख़्तका॥
दिल्लीमें आज भीक भी मिलती नहीं उन्हें।
था कल तलक दिमाग़ जिन्हें ताजो-तख़्तका॥

'मीर'के उक्त चारों शेर व्यथा-पूर्ण हैं और तत्कालीन इतिहासका एक झलकमें दिग्दर्शन करानेमें कमाल रखते हैं, किन्तु इन अशआरमें रंगे-तग़ज़्ज़ुल नहीं दिखलाई देता। ग़ज़लके प्राण हुस्नो-इश्कके रूपकका कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ।

---

[1]हरे-भरे पेड़ोंकी, [2]रौनक, [3]छाया।

उजडी हुई दिल्लीमे बैठकर मिर्ज़ा 'ग़ालिब' इसी घटनाको रंगे-तग़ज्जुलमे देखिए किस सलीकेसे व्यक्त करते है—

दिलमें जौके-वस्लो-यादे-यार तक बाक़ी नहीं।
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया[1]॥

इतने बडे विध्वंसकी बात 'ग़ालिब'ने किस ख़ूबी और सादगीसे कही है कि कानूनकी जदमे भी न आये; सुख़न-फहम लुत्फ अन्दोज भी हो सके और जन साधारण जौके-वस्लके चक्करमे ही पडे रहे।

पिछले पृष्ठोंमे 'तग़ज्जुल' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। तगज्जुलसे हमारा आशय गजलगोईसे है। कवितामे जब तक कवित्व न हो, कविता नही। मिठाईसे मिठास, मेहदीमे लाली, फूलमे सुगन्ध और आदमीमे आदमीयत होना आवश्यक है तो गजलमे तगज्जुलका होना भी ज़रूरी है। तगज्जुलके बिना गज़ल बेजान, बेमज़ा और फीकी है। गज़लमे उसके रूपकोके मिश्रणसे रंगे-तगज्जुल पैदा होता है।

रंगे-तग़ज्जुल

चन्द उदाहरण—

जौककी गजलका एक मशहूर शेर है—

नाम मंज़ूर है तो फ़ैज़के[2] असबाब[3] बना।
पुल बना, चाह[4] बना, मस्जिदो-तालाब बना॥

शेरके वजनने शाइरको इजाज़त नही दी, वरना मतब,[5] मकतब[6]

---

[1] अब हमारे हृदयमे जौके-वस्ल (प्रेयसीके मिलनकी अभिलाषा) और यारकी याद तक बाकी नही है। क्योकि हमारे हृदयरूपी घरमे ऐसी आग लगी है कि सर्वस्व भस्मीभूत हो गया।
[2] उदारताके, दानवीरताके; [3] कार्य; [4] कुआँ, [5] औषधालय; [6] स्कूल।

आदि और भी नेक कामोकी फहरिस्त नज़्म की जा सकती थी। शाइरने जिस भावनासे प्रेरित होकर शेर कहा है, उसमें वह सफल हुआ है। लेकिन इस शेरमें तग़ज़्ज़ुल तलाश करनेपर भी नहीं मिलता। खालिस मौलवियाना रंगका शेर है। अगर मौलवियों-जैसी बेतुकी बातें शाइर भी कहने लगें तो फिर उनकी विशेषता क्या रही? 'अज़ीज़' लखनवी नेक काम करनेकी प्रेरणा यूँ करते हैं—

पैदा वोह बात कर कि तुझे रोयें दूसरे।
रोना खुद अपने हालपै यह ज़ार-ज़ार[1] क्या?

शेरमें नेक कामोकी कोई सूची नहीं है, फिर भी उसके पढनेसे मनको प्रेरणा मिलती है। आशिक़ सदैव रोता-बिसूरता रहता है। ग़ज़लके इसी रूपकको देनेसे शेरमें तग़ज़्ज़ुल भी आ गया और चूँकि शाइरने स्वयंको सम्बोधित करके लिखा है; ज़ौक़की तरह दूसरोंको नसीहत नहीं की। इसलिए मौलवियतके इलज़ामसे भी बरी रहे। इसी भावके द्योतक दो शेर 'मीर'के भी मुलाहिज़ा फर्माएँ—

चाहे[2] दुनियामें रहो ग़मज़दा[3] या शाद[4] रहो।
ऐसा कुछ करके चलो, याँ कि बहुत याद रहो॥

कहता है कौन तुझको याँ यह न कर तू वोह कर।
पर हो सके तो प्यारे टुक दिलमें भी जगह कर॥

आशय तो अज़ीज़का भी यही था कि हम ऐसे भले काम करें कि दूसरे हमें याद करें। मगर 'याद'के बजाय उन्होंने 'रोये दूसरे' नज़्म किया। दूसरों-के रोनेसे लानत-मलामतका भी आशय निकलता है कि लोग कहें "कम्बख़्त

---

[1]बिलख-बिलखकर; [2]चाहे; [3]शोक-सन्तप्त; [4]प्रसन्न।

आप तो मर गया और हमें मार गया।" सताये हुए लोग बुरोकी जानको उनके मरनेके बाद भी रोते रहते हैं। इस ऐबसे 'मीर'का उक्त पहला शेर बेदाग है—

ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो

याद प्यारेकी और भले आदमियोकी आती है बुरोकी नही।

'मीर'का दूसरा शेर दूसरेको नसीहत देनेकी वजहसे मौलवियतके दायरेमें आजाता, किन्तु 'मीर'का कमाल देखिए कि दामन बचाकर साफ निकल गये। दूसरे मिसरेमें 'प्यारे' शब्द डालकर 'मीर'ने वोह रगे-तगज्जुल पैदा कर दिया है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल पा रहे हैं।

'हाली'का यह शेर बहुत मशहूर है—

खेतोंको दे लो पानी यह बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो! उठती जवानियाँ है॥

'हाली'की नज्मका उक्त शेर अपनी जगहपर बहुत खूब है और नवयुवकोको स्फूर्ति एव प्रेरणा देता है। चूंकि उक्त शेर नज्मका है, इसलिए इसमें रगे-तगज्जुल नही आ पाया है। रगे-तगज्जुलमे इसी भावका द्योतक तस्लीमका शेर है—

इल्तफाते-जोशे-वहशत[1] फिर कहाँ?
हो सके जबतक बयाबाँ देख लें॥

जवानी दीवानी नही हुई तो फिर जवानी क्या? और उस हालतमें कुछ हाथ-पाँव न मारे तो फिर दीवानगी क्या? इसलिए जो बन सके इस दीवानगीमे कर ले, फिर अवसर हाथ न आयेगा।

---

[1] दीवानगीकी यह कृपाएँ फिर कहाँ मयस्सर? इसी आलममे जितना जगल देखा जा सके देख लिया जाय।

बात तो 'तस्लीम'ने भी 'हाली' जैसी कही, परन्तु किस खूबसूरतीसे कही है। 'जोशे-वगहत', 'बयावाँ'के नगीने जड़कर रगे-तगज्जुलमें चार चाँद लगा दिये और 'देख ले' शब्द डालकर रिन्दाना शेर बना दिया और नसीहत देनेकी जहमतसे भी साफ बच गये। इसी भावको 'शाद' अज़ीमाबादीने देखिए कितने सलीकेसे पेश किया है—

यह बज़्मे-मै है, याँ कोताह दस्तीमें है महरूमी।
जो बढ़कर खुद उठाले हाथमें, मीना उसीका है॥

शेरका जाहिरा मतलब तो सिर्फ इतना है कि यह शराबखाना है, यहाँ पीछे रहनेमें नुकसान है। यहाँ तो आपा-धापी मची हुई है, जो आगे बढकर प्याला झपट सकता है, वही पी सकता है।' मगर रिन्दाना अन्दाज़में 'शाद'ने इन दो मिसरोंमें वोह स्फूर्ति, प्रेरणा और आग भरी है कि जिसका जवाब नहीं।

'हाली'की गज़लका एक शेर है—

ऐ इश्क! तूने अक्सर कौमोंको खाके छोड़ा।
जिस घरसे सर उठाया, उसको बिठाके छोड़ा॥

शेर पढते-पढते ऐसा मालूम होता है कि मौलाना 'हाली' ताँगेमें बैठ कर कॉलिजोंके आगे चक्कर लगा रहे हैं, और माइक्रोफोनपर वह गज़ल, जिसका एक शेर ऊपर दिया गया है, चीख-चीख़कर पढ रहे हैं और लड़के हैं कि तालियाँ पीट रहे हैं।

इसी मजमूनको एक शाइर देखिए किस सुरुचिपूर्ण ढगसे पेश करते हैं—

ऐ इश्क! देख हम भी हैं किस दिलके आदमी।
महमाँ बनाके गमको कलेजा खिला दिया॥

इश्क, दिल, गम आदि शब्दोंने शेरमें सोज़ो-गुदाज पैदा कर दिया और नामहाना दाग़ भी नहीं लगने दिया। अब 'मीर' का भी एक शेर

वग़ैर किसी टीका-टिप्पणीके सुन लीजिए और मेरी तरह बैठे हुए सर धुनिए—

इश्क आदममें नहीं कुछ छोड़ता।
हौले-हौले कोई खा जाता है जी॥

मिर्ज़ा दागका एक शेर है—

यहाँ भी तू, वहाँ भी तू, ज़मीं तेरी, फ़लक तेरा।
कहीं हमने पता पाया न हरगिज़ आजतक तेरा॥

स्पष्ट है कि शेर खुदाके लिए कहा गया है। अब देखिए इसी भावको 'मीर' मज़ाजी इश्कमे किस विश्वासके साथ फर्माते है—

है इस चमनमें वोह गुल, सदरंग महव देखो।
देखो जहाँ वही है, कुछ उस सिवा न देखो॥

'दाग' यह जानते हुए भी कि ईश्वर सर्वत्र है, उसके जलवेसे वञ्चित रहते है। 'मीर' उसका जलवा सर्वत्र देखते है। दोनोके विश्वास और प्यारमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। इसके अतिरिक्त दागके शेरमें तग़ज़्ज़ुल नामको नही और 'मीर'का शेर चमन, गुल, सदरंग, महव आदि शब्दोंसे तगज़्ज़ुलका बेमिसाल शेर हो गया है।

मौलाना ज़फ़रअलीका एक शेर है—

यह है पहचान ख़ासाने-ख़ुदाकी इस ज़मानेमें।
कि ख़ुश होकर ख़ुदा उनको गिरफ़्तारे-बला करदे॥

प्रकट रूपमे तो इस शेरमें उसी पुरानी धारणाको नज्म किया गया है कि ईश्वरभक्तो और भले मनुष्योपर सदैव मुसीबतोंके पहाड़ टूटते रहे है, और यह सब इसलिए होता है, ताकि ईश्वर अपने असली-नक़ली भक्तो एवं अच्छे-बुरे मनुष्योकी पहचान कर सके। वह महज़ आज़मानेके लिए यह सितमज़रीफी करता है, क्या खूब?

किसीकी जान गई आपकी अदा ठहरी

यदि वह घट-घटका ज्ञाता है तो फिर उसे यह ज़हमत उठानेकी ज़रूरत भी क्या, किसीको बग़ैर सताये भी वह अपने दिव्यज्ञानसे सब कुछ जान सकता है। लेकिन नहीं, जिनपर वह बहुत ख़ुश होता है, महरबानी फ़र्माकर उसे बलाओ-आफ़तोंमे घेर देता है।

ख़ुदाकी इन्हीं नितम्ज़रीफ़ियोंसे तंग आकर सर 'इक़बाल'ने उससे पूछा था—

> इसी कोकबकी ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
> ज़वाले-आदमे-ख़ाकी ज़ियाँ तेरा है या मेरा'॥

ख़ुदाकी इन नाज़िल की हुई मुसीबतोंसे घिरे हुए मिर्ज़ा ग़ालिब कितने वेदना भरे स्वरमें कराह उठते हैं—

> ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री या रब!
> हम भी क्या याद रखेंगे कि ख़ुदा रखते थे॥

'बहार' कोटिका यह उलाहना कितना व्यथापूर्ण है—

> वहाँ हज़ारो बहिश्तें भी हैं ख़ुदावन्दा!
> सिसक-सिसकके कटी ज़िन्दगी जहाँ मेरी॥

लेकिन आशिकके मनमें यह भाव भी आना अधर्म है कि मुझ निरपराधको किन पापोंकी सज़ा मिल रही है। बक़ौल राज़ यज़दानी—

---

[1] इन्हीं नक्षत्रोंके प्रकाश (कोकबकी ताबानी) से तेरा संसार जग-मग हो रहा है। फिर भी तू इन्हींको मिटा रहा है। मैं पूछता हूँ, तेरी इस हरकतसे स्वयं तेरा नुकसान हो रहा है या मेरा? जब तू ख़ुदा-ख़ुदा कहनेवालोंको मिटा डालेगा, तब तुझे ख़ुदा कौन कहेगा? इन्हींकी बदौलत तो तू ख़ुदा बना हुआ है।

सज़ाको झेलनेवाले यह सोचना है गुनाह।
कोई क़ुसूर भी तुझसे कभी हुआ कि नहीं॥

हम भी कहाँकी बात कहाँ ले गये। हमे कहना सिर्फ इतना था कि मौ० ज़फ़रअलीका ज़ाहिरा आशय केवल इतना है कि ख़ुदा जिनपर महरवान होता है, खुश होकर उन्हे बलाओमे फँसा देता है। यानी उन्होंने खुदाकी आडमें उस हकीक़तको उजागर किया है, जो कि हमारे जीवनमें अक्सर घटित होती रहती हैं। यानी हमारे महरबान, शुभचिन्तक, प्यारे-मीठे ही हमें अक्सर मुसीबतोमें फँसाते रहते है। बक़ौल किसीके—

दोस्तों से हमने वोह सदमे उठाये जानपर।
दिलसे दुश्मनकी अदावतका गिला जाता रहा॥

जफरअली और उक्त शाइरने एक बातको दो तरीकोसे बयान किया है, और उसमें वे बेहद कामयाब हुए है। मगर तगज्जुलकी चाश्नीके बग़ैर शेरमे शेरियत नही आ पाती। अब ज़रा 'मीर'का रगे-तगज्जुल भी मुलाहिज़ा फर्माएँ—

जफा उसपै करता है हदसे ज़ियादा।
जिसे यार अहले-वफ़ा जानता है॥

उक्त शेरका लुत्फ स्वानुभवी ही उठा सकते है। पत्नी या प्रेयसीके बिगड़ने-रूठने, ज़िद करने या तग करनेपर उससे कहा गया हो कि "जब देखो तुम हमारे सरपर चढी रहती हो, हमे इतना तग न किया करो।" तब उसका तेवर बदलकर कहना—"तुम्हारे सिवा मेरा और है ही कौन, जिसपर मैं झूँझल उतारती फिरूँ? अपनेपर ही तान टूटती है, दूसरा कौन सुनता है?"

'मीर'का शेर पढ़िए और प्रयत्न कीजिए कि आपका भी कोई ऐसा अपना हो, जो आपपर जफा करना अपना हक समझता हो। तब शायद

आप 'वासिन' भोपालीके इस शेरको पढ़नेके हक़दार हो सकें—

उस जुल्मपै कुर्बां लाख करम, उस लुत्फपै सदके लाख सितम।
उस दर्दके काबिल हम ठहरे, जिस दर्दके काबिल कोई नहीं॥

शब्दोंके रख-रखावकी यही वह कोमल कला है, जो ग़ज़लको कहीं-से-कहीं पहुँचा देती है। मश्के-सुख़नसे ग़ज़ल तो हर कोई कह सकता है, मगर उसमें जान नहीं डाल सकता। जान डालनेके लिए अपनी जान खपानी पड़ती है। दर्दे-दिलसे परिचित हुए बिना दास्ताने-ग़म बयान नहीं हो सकती। बक़ौल 'मीर'—

लज्ज़तसे दर्दकी जो कोई आश्ना नहीं।
सौ लुत्फ क्यों न जमा हों, उनमें मज़ा नहीं॥

वर्तमान युगीन ग़ज़लमें कितना अभूतपूर्व संशोधन, परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन हुआ है? उसका बाज़ारी इश्क़, हरजाई माशूक़, बुलहविस

नई ग़ज़लगोई

आशिक परिवर्त्तित होकर कितने बुलन्द हो गये हैं? ग़ज़लमें कैसे-कैसे अछूते मज़मूनोंका समावेश हुआ है, और ग़ज़लगो शाइरोंने कैसे-कैसे बेदाग़ हीरे तराशे हैं? लगे हाथ एक नज़र उनको भी देखते चलिए।

उद्धरणमें इसी युगके शाइरोंके शेर दिये जा रहे हैं, ताकि वर्तमान युगीन ग़ज़लगोईकी प्रगतिका सही-सही अन्दाज़ा लग सके। तुलनाके लिए पुरानी शाइरीका उल्लेख करते समय उसी युगके शेर उद्धृत किये जा रहे हैं, और जहाँ नवीन शाइरीमें पुरानी शाइरीकी झलक मालूम होती है, वहाँ तुलनाके लिए फुटनोटमें प्राचीन शाइरोंमें सर्वश्रेष्ठ 'मीर'के अशआर दिये जा रहे हैं; ताकि पुरानी और नई शाइरीकी गति-विधिका ठीक-ठीक आभास मिल सके।

उर्दू-ग़ज़लमें हरजाई एवं बाज़ारी माशूक़का तसव्वुर दरबारी-वाता-

वरण, तत्कालीन वेश्यासक्तिकी आम प्रथा और फारसी शाइरीके अन्ध अनुकरणके कारण आया। यदि तत्कालीन गज़लगो शाइर हिन्दी-कविताका

पाक इश्क

अनुसरण करना अपनी शानके ख़िलाफ समझते थे, अथवा हिन्दीसे अनभिज्ञ होनेके कारण उसके गुणोसे परिचित नही थे, तो भी यदि वे फारसीके बजाय अरबी-शाइरीका अनुकरण करते तो उर्दू-शाइरी पाक इश्कसे मालामाल हुई होती।

अरबी-शाइरीका इश्क भी इन्सानी इश्क है, किन्तु वह कामुकता एव वासनाके दोषसे मुक्त है। प्रेमी-प्रेमिका एकान्तमे बैठे हुए है, किसीकी दृष्टि पड़नेका भी उन्हे खटका नही है; परन्तु क्या मजाल कि दोनोमे-से किसीके हृदयमे भी काम-वासना निहित हो। दोनो प्रेम-विभोर हुए बैठे है। यह बात प्रसिद्ध है कि एक बार ऐसे ही अवसरपर किसी प्रेमीने अपनी कामवासना व्यक्त की तो प्रेमिका क्रुद्ध होकर बोली—"क्या इसी लिए तुम मुझसे प्रेम करते थे?" प्रेमिकाके यह शब्द सुनकर प्रेमी गद्-गद हो गया। उसे अपने भाग्यपर अभिमान हुआ कि उसे इतनी पवित्र और सुशीला नारीसे प्रेम करनेका सौभाग्य प्राप्त हो सका। फिर उसने अपनी प्रेयसीपर वास्तविक बात प्रकट कर दी कि उसने परीक्षास्वरूप ऐसा प्रस्ताव किया था। यदि तनिक भी स्वीकृतिका सकेत मिला होता तो उसे महान् क्लेश पहुँचता और यह खजर उसने सीनेमे उतार लिया होता।[1]

प्रेयसीसे शादी करना या वासना तृप्त करना, प्रेम नही, प्रेमका शव पीटना है, कामुकताको प्रेम कहना शैतानको खुदा कहना है—

आरज़ू— हविसकार[2] आशिक भी ऐसा है जैसे—
वोह बन्दा कि रख ले खुदा नाम अपना॥

---

[1]मज़ामीर पृ० २६; [2]कामुक।

विना किसी वासना या स्वार्थके प्रेममे आठो पहर भीगा रहे, वही प्रेम शुद्ध प्रेम है—

असर— इश्क है इक निशाते-बेपायाँ[1]।
शर्त यह है कि आरज़ू[2] न रहे॥

आसी— आशिकीमें है महवियत[3] दरकार।
राहते - वस्ल[4]-ओ - रंजे-फुरकत[5] क्या॥

जिगर— वोह भी है इक मुकामे-इश्क जहाँ—
हर हर तमन्ना[6] गुनाह[7] होती है॥

असर— मजाके-इश्क हो कामिल तो सूरते-शवनम[8]।
कनारे-गुलमें रहे और पाकबाज़[9] रहे॥

आरज़ू— दरयूज़ागरे-हिर्स[10] न वन राहे-तलबमें[11]।
दिल इश्कसे खाली है तो कासा[12] है गदाका[13]॥

उम्मीद—अरे सूदो-ज़ियाँ[14] देखा नहीं जाता मुहब्बतमें।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है॥

---

[1]स्थायी सुख, [2]अभिलाषा, वासना; [3]तन्मयता, [4]मिलन-सुख, [5]विरह-दुःख; [6]इच्छा; [7]अपराध; [8]ओसकी तरह; [9]फूलपर रहती हुई भी अछूती—अलग—रहती है; [10]तृष्णाके कारण दर-दरका भिखारी; [11]अभिलाषाओंके मार्गमे, [12,13]भिक्षुकका पात्र; [14]लाभ-हानि।

[*]मीर—चाहतका इज़हार[1] किया सो अपना काम खराब किया।
इस पर्देके उठ जानेसे उसको हमसे हिजाब[2] हुआ॥

---

[1]इच्छा प्रकट की; [2]लाज, सकोच।

यह नि:स्वार्थ और पवित्र प्रेम सरल नहीं, इसमें जीवनभर तपना पड़ता है—

जिगर— यह इश्क नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजे।
इक आगका दरिया है, और डूबके जाना है॥

आरज़ू— मुहब्बत नहीं आगसे खेलना है।
लगाना पड़ेगा बुझाना पड़ेगा॥*

जब इस प्रेमरूपी आगमें मनुष्य तप लेता है, तभी वह सचमुच इन्सान बन पाता है—

शाद— नहीं रहते रिया-ओ-कबह फिर भूलेसे भी दिलमें।
मुहब्बत यारकी इन्साँ बना देती है इन्साँको॥†

---

*मीर— क्या जानिए कि छाती जले है कि दागे-दिल।
इक आग-सी लगी है कहीं, कुछ धुआँ-सा है॥
हम तेरे इश्कसे वाकिफ नहीं हैं लेकिन—
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है॥
आतिशे-इश्क[1] जिसके दिलको लगी।
शमअ-साँ[2] आप ही को खाता है॥
इश्कके दो गवाह ला, यानी—
जर्द-ए-रंगो-चश्मेतर[3] है शर्त॥
चाहतमें[4] दख़ल मत दे जिनहार[5] आरजूको[6]।
करदे है दिलकी ख़्वाहिश[7] बीमार-रफ़्ता-रफ़्ता॥

†मीर— सज्दा उस आस्ताँका[8] न जिसको हुआ नसीब।
वोह अपने एतकादमें[9] इन्सान ही नहीं॥

---

[1]प्रेम-अग्नि; [2]मोमबत्तीकी तरह स्वयंको जलाता रहता है; [3]चेहरा पीतवर्ण और नेत्र अश्रुपूर्ण; [4]प्यारमें, इश्कमें; [5]कदापि, [6]अभिलाषाको; [7]इच्छा; [8]प्यारेकी चौखटको प्रणाम करना; [9]हमारी सम्मतिमें।

यही शुद्ध प्रेम 'तू', 'मैं' और अपने-परायेका भेद भी मिटा देता है। सर्वत्र अपने प्यारेका जलवा नज़र आता है—

इस्लामो-कुफ़्र कुछ नहीं आता ख़यालमें।
मुद्दतसे मुब्तला हूँ मैं आप अपने हालमें॥*

प्रेममें कहीं-न-कहीं कसर होती है, तभी उपेक्षाका आभास होता है—

राज़ रामपुरी—नियाज़े-इश्कमें ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है॥

अगर इश्कमें कहीं ख़ामी नहीं है, तो फिर बरहमी (उपेक्षा) महसूस होनेके क्या मानी? इश्क़ तो इन्सानको उस बुलन्दीपर पहुँचा देता है कि—

नाज़िश परतापगढ़ी—शिकवा न शिकायत, न तसव्वुर, न ख़यालात।
अल्लाहरे यह मेरी मुहब्बतके मुकामात॥†

---

*मीर— दिल साफ हो तो जलवागहे-यार क्यों न हो।
आईना हो तो काबिले-दीदार क्यों न हो'॥
दिया दिखाई मुझे तो उसीका जलवा 'मीर'।
पड़ी जहानमें जाकर जहाँ नज़र मेरी॥
जिस्मे-ख़ाकीका जहाँ पर्दा उठा।
हम हुए वोह 'मीर' सब, वोह हम हुआ॥

†मीर— हमें इश्कमें 'मीर' चुप लग गई है।
न शुक्रो-शिकायत, न हर्फ़ो-हिकायत॥

'यदि मन-मन्दिर स्वच्छ है तो उसमें प्यारेका निवास क्यों न होगा? मन-दर्पण होगा तो वह दर्शन-योग्य होगा ही।

वह युग समाप्त हुआ, जब इश्कको ववाले-जान समझकर उससे वचनेकी ताकीद की जाती थी—

वसीयत 'मीर' ने मुझको यही की—
"कि सब कुछ होना तू आशिक़ न होना"॥

अब तो वग़ैर इश्क इन्सान, इन्सान नही वन पाता—

असर— इन्सानको वे इश्क सलीक़ा नहीं आता।
जीना तो बड़ी चीज है, मरना नही आता॥

राधेनाथ क़ौल—इश्क़ जन्नत है आदमीके लिए।
इश्क नेमत है आदमीके लिए॥*

प्रेम-विभोर प्रेमीको प्रेमका मार्ग वतानेके लिए पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता नहीं—

दिल— रहनुमाकी[1] क्या जरूरत इश्क कामिल[2] चाहिए।
दिल जहाँ तड़पे समझ लेना वही है कूए-दोस्त[3]॥

सच्चा प्रेमी घुट-घुटके मर जायगा, किन्तु कोई भी इच्छा ऐसी व्यक्त नही करेगा, जो उसकी प्रेयसीको अरुचिकर हो—

---

[1]पथ-प्रदर्शककी; [2]पूर्ण; [3]प्रेयसीका स्थान।

*मीर— क्या हकीकत कहूँ कि क्या है इश्क।
हक-शनासोंका[1] हाँ ख़ुदा है इश्क॥
इश्कसे जा[2] नहीं कोई ख़ाली।
दिलसे ले अर्शतक[3] भरा है इश्क॥

---

[1]इन्साफ-पसन्दोंका, सत्यवादियोंका; [2]स्थान; [3]आकाशतक।

आरज़ू— ऐसी हसरत[1] ही से दाज़ आना है ख़ूब।
जो मुझे मरग़ूब[2] उनको नापसन्द॥

जिगर—शौकका मर्सिया न पढ़, इश्ककी बेबसी न देख।
उसकी ख़ुशी, ख़ुशी समझ, अपनी ख़ुशी, ख़ुशी न देख॥

अर्शी— जब उन्हें अर्ज़े-अलमपर[3] मुज़तरिब[4] पाता हूँ मैं।
जो न पीनेके हैं आँसू वोह भी पी जाता हूँ मैं॥

लुत्फ़ी रिज़वाई—नज़र किसीकी नदामतसे[5] क्या झुकी 'लुत्फ़ी'!
कि याद मुझको ख़ुद अपने ही सब कुसूर आये॥

यदि प्रेमीके किसी बर्तावसे प्रेयसीके हृदयको ठेस पहुँचे या उसकी आँखोंसे आँसू आ जायें तो यह उसका अपराध क्षमा योग्य नहीं—

जिगर— हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख़्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोंका पशेमाँ[6] होना॥

प्रेमी मन ही मनमें घुटता रहता है, परन्तु मनकी बात मुँहपर इस भयसे नहीं लाता कि कहीं उसकी प्रेयसीकी प्रतिष्ठामें बाल न आ जाये—

ख़ुर्शीद फ़रीदाबादी—आ जाये न उनकी निगहे-मस्तपै इल्ज़ाम।
ऐ दोस्त! न कर तज़किर-ए-शादिये-ऐयाम[7]॥*

---

[1] इच्छासे, [2] रुचिकर, [3] अपनी व्यथाओंके प्रकट करनेपर; [4] बेचैन, [5] शर्मिन्दगीसे; [6] शर्मिन्दा; [7] ख़ुशीवक्तोंका वर्णन।

*मीर— गिला लबतक न आया 'मीर' हरगिज़।
सफा जी ही में ग़म सारा हमारा॥
तुरबतसे आशिक़ोंकी न उट्ठा कभी ग़ुबार।
जीसे गये वले[1] न गई राज़दारियाँ[2]॥

---

[1] लेकिन, [2] भेदकी बातें किसीको न बताईं।

सच्चा प्रेमी 'मोमिन' की तरह अपनी प्रेयसीको वदनाम करनेकी धमकी नही देता है—

मुझसे मिल वरना, रक़ीबोसे मै सव कह दूँगा।
दुश्मनी अवकी तेरी और वह पहला इख़लास॥

वल्कि वदनामीको स्वयं ओढकर प्रेयसीकी मान-प्रतिष्ठाको अक्षुण्ण वनाये रखता है—

अर्शी— ज़माना कहता है वरवादे-आरज़ू मुझको।
ख़ुदा करे कोई इलज़ाम उनपै आ न सके॥
इस्मते-कौनीन[1] उस वरवादे-उलफ़तपर[2] निसार[3]।
उनके दामनको वचाकर ख़ुद जो रुसवा[4] हो गया॥

और यदि प्रेमी अपनेमें इतनी सामर्थ्य नही पाता है, तो उसे जीवित रहनेका अधिकार नही—

हसरत—उस शौक़का शिकवा किया, 'हसरत' यह तूने क्या किया?
इससे तो ऐ मर्दे-ख़ुदा! वेहतर था मर जाना तेरा॥

शिकवे-शिकायतकी पाकइश्कमे गुजाइश ही नही। वहाँ तो सच्चे आशिककी हालत यह होती है—

फ़ानी— अव लवपै वोह हंगामि-ए-फ़रियाद नहीं है।
अल्लाहरे तेरी याद कि कुछ याद नहीं है॥

अर्शी— आपके अहदे-करमका भी तसव्वुर है गराँ[5]।
उन मुक़ामातपै अव आपका सौदाई[6] है॥

---

[1]ससारकी प्रतिष्ठा; [2]प्रेममें वरवाद हुएपर; [3]न्योछावर; [4]वदनाम; [5]आपकी कृपाओंके क्षण भी ध्यानमे नही रहे है; [6]आपका यह दीवाना आशिक इतनी वुलन्दीपर पहुँच गया है।

वाकी सद्दीकी— यह कैसी वेखुदी है लिख गया हूँ।
मैं अपने नामके वदले तेरा नाम॥

मसरूफ अलम—उनके तसव्वुरातका[1] अल्लाहरे करम।
तनहा[2] न एक लमहेको रहने दिया मुझे॥

असग़र— होश किसीका भी न रख, जलवागहे-नियाज़में[3]।
वल्कि खुदाको भूल जा सज्द-ए-वेनियाज़में[4]॥*

ग़ज़लका इश्क जव इतना पाक और वेलौस होता जा रहा है, तव उसके माशूक (महवूव, प्यारे) का मर्तवा कितना वुलन्द, महान् एवं गौरवास्पद होना चाहिए? यह जिज्ञासा सहज-में ही वलवती हो उठती है। आलमे-इश्कमें महवूव ही सव कुछ है। आशिकके लिए महवूवकी चौखट कावा और उसको वार-वार निहारना ही नमाज़ है—

महवूवका मर्तवा

शाद— तेरी गलीके कअ्दह्-कयामको[5] क्या वात?
इसीको दिलकी जवांमें नमाज़ कहते हैं॥

---

[1]ध्यानका; [2]अकेला; [3]प्रेम-मन्दिरमें; [4]प्रेमकी तल्लीनतामें; [5]वैठने, रहनेको।

*मीर— महव कर आपको यूँ हस्तीमें उसकी, जैसे—
वून्द पानीकी नज़र आती नहीं पानीमें॥
सदा हम तो खोये-गये-से रहे।
कभू आपमें तुमने पाया हमें?
जौके-ख़वरमें हम तो वेहोश हो गये थे।
क्या जाने कव वोह आया, हमको नहीं खवर कुछ॥
कुछ होश न था निस्वतो-महरावका हमको।
सद शुक्र कि मस्जिदमें हुए मस्तीमें वारिद॥

जलील— दैरो-काबेकी जियारत[1] तो फ़कत हीला[2] है।
जुस्तजू[3] तेरी लिए फिरती है घर-घर मुझको॥

यगाना— मंज़िलकी फ़िक्र क्यों हो, जब तू हो और मैं हूँ।
पीछे न फिरके देखूँ, काबा भी हो तो क्या है॥

माहिर— हम भी ज़रूर काबेको चलते पर अब तो शेख़!
किस्मतसे बुतकदेमें ही दीदार हो गया॥

असगर— हम एक बार जलवये-जानांना[4] देखते।
फिर काबा देखते न, सनमख़ाना देखते॥

'असग़र' तो अपने हबीबकी तलाशमें इतने लीन है कि उसे खोजनेकी धुनमें वे मन्दिरो-मस्जिदोकी ओर भी नही देखते। उन्हें अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमे बाधा समझते हैं—

दैरो-हरम[5] भी कूचये-जानांमें[6] आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

जिन्हे कूचये-महबूब नसीब हो गया है, उनकी किस्मतका क्या कहना? कूचये-जानांके सामने फिरदौस (जन्नत, स्वर्ग) की भी क्या हकीकत?

---

[1]यात्रा, दर्शन करना; [2]बहाना; [3]तलाश, खोज; [4]प्रेयसीका रूप, [5]मन्दिर-मस्जिद, [6]प्रेयसीके स्थानतक पहुँचनेके मार्गमें।

*मीर— हज़ार मर्त्तबा बेहतर है बादशाहीसे।
अगर नसीब तेरे कूचेकी गदाई हो॥
रहनेकी अपनी जा तो, न दैर है न काबा।
उठिए जो उसके दरसे तो हजिए किधरके?
देखा करूँ तुझीको, मंजूर है तो यह है।
आँखें न खोलूँ तुझ बिन मक्दूर है तो यह है॥

हसरत मोहानी— वल्लाह तुझे छोड़के ऐ कूचये-जानाँ !
'हसरत'से तो फिरदौसमें[1] जाया नहीं जाता ॥*

बेनज़ीरशाह— वोह तेरी गलीकी कयामतें कि लहदसे[2] मुर्दे निकल गये।
वोह मेरी जबीने-नियाज़[3] थी कि वहीं धरी-की-धरी रही ॥

महबूबका मर्तबा ख़ुदासे कम नहीं, बकौल किसीके—

दावरके[4] सामने बुते-काफिरको क्या कहूँ ?
दोनोंकी शक्ल एक है, किसको ख़ुदा कहूँ ॥

और 'बहज़ाद' लखनवी तो महबूबको ही ख़ुदा समझते हैं—

---

[1]जन्नतमें, [2]कब्रसे, [3]नतमस्तक; [4]ख़ुदाके।

*मीर— फिरदौसको[1] भी आँख उठा देखते नहीं।
किस दरजा सैरे-चश्म[2] हैं कूए-बुतांसे हम ?
जन्नतकी मिन्नत उनके दमाग़ोंसे कब उठे ?
ख़ाके-रह[3] उसकी, जिसके कफ़नका अबीर हो ॥
फ़रो[4] न आये सर उसका तवाफ़े-काबासे[5]।
नसीब जिसको तेरे दरकी जिबहसाई[6] हो ॥
किसको कहते हैं, नहीं मैं जानता इस्लामो-कुफ्र।
दैर हो या काबा, मतलब मुझको तेरे दरसे है ॥
बैठने दे है कौन फिर उसको ?
जो तेरे आस्तांसे उठता है ॥
यूँ उठे उस गलीसे हम—
जैसे कोई जहांसे उठता है ॥

---

[1]जन्नतको; [2]तृप्त; [3]मार्ग-रज, [4]नीचे; [5]काबेकी प्रदक्षिणासे; [6]मस्तक रगड़ना।

आ मेरी कायनाते-दिल[1] ! मेरी वहारे-ज़िन्दगी !
आ कि मैं यह न कह सकूँ "मुझको ख़ुदा न मिल सका" ॥

अपने प्यारेके ध्यानमें दिन-रात लीन रहना ही प्रेम-धर्म है—

हसरत मोहानी—शब वही शब[2] है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमें गुज़र जाये॥

आसी— जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब[3] ऐसी सुहबत क्या ?*

अपने प्यारेके चिन्तन और स्मरणके अतिरिक्त प्रेमीको अन्य कुछ भी नहीं सुहाता—

हसरत— हम क्या करें अगर न तेरी आरज़ू करें !
दुनियामें और कोई भी तेरे सिवा है क्या ?

---

[1]दिलकी दुनिया; [2]रात; [3]इष्ट-मित्र।

*मीर—गई तसबीह[1] उसकी नज़अमें[2] कब 'मीर'के दिलसे ?
उसीके नामकी सुमरन थी, जब मनका ढलकता था॥
हर सुबह उठके तुझसे माँगूँ हूँ मैं तुझीको।
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है॥
रहते हो तुम आँखोंमें, फिरते हो तुम्हीं दिलमें।
मुद्दतसे अगर्चे याँ, आते हो न जाते हो॥
हमनशीं[3] ! क्या कहूँ, उस रश्के-महे-तावाँ[4] बिन।
सुबहे-ईद अपनी है बदतर, शबे-मातमसे[5] भी॥

---

[1]माला, सुमरन; [2]प्राणान्त समयमें; [3]पड़ौसी; [4]जिसके सौन्दर्यपर चन्द्रमाको भी ईर्ष्या हो; [5]शोक-रात्रिसे।

जलील— मुझे तमाम जमानेकी आरजू क्यों हो ?
बहुत हैं मेरे लिए एक आरजू तेरी ॥

फ़ानी— एक आलमको देखता हूँ मैं।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम[1] क्या ॥

जिगर मुरादाबादी—
यूं जिन्दगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर।
जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं ॥

जिगर बरेलवी—तुम नहीं पास कोई पास नहीं।
अब मुझे जिन्दगीकी आस नहीं ॥

दिल— नजरका इक इशारा चाहिए अहले-मुहब्बतको।
जबीने-शौक झुक जाये जिधर कहिए, जहाँ कहिए ॥

महबूबका जमाल

प्रेयसीके रूप, हाव-भाव (जमाल) का वर्णन करना बहुत ही नाजुक एव कोमल कला है। तनिक-सी असावधानीसे अश्लीलताके धब्बे उभर आते है। ऐसा कौन विवेक-हीन कलाकार होगा, जो अपनी प्रियतमाके गुप्तांगोका चित्रण करे। लेकिन गजलगो शाइर ऐसा करते रहे हैं। पिछले वक्तोंके बाज-बाज शाइरोंने तो अपनी कामुक मनोवृत्तिका बहुत ही कुरुचिपूर्ण परिचय दिया है। कई स्थलोंपर तो ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने अपनी प्रिय-तमाको नग्न करके चौराहेपर खड़ा कर दिया है—

निजाम रामपुरी— वोह जानुओंमें सीना छुपाना सिमटके हाय !
और फिर सम्भालना वोह दुपट्टा, छुड़ाके हाय ॥

---

[1] पूर्णरूपेण।

दाग़— हर अदा मस्ताना सरसे पाँवतक छाई हुई।
उफ़ तेरी काफ़िर जवानी, जोशपर आई हुई॥

अब जमाना बदल गया है। वर्त्तमान युगमे प्रियतमाको जो उच्चासन प्राप्त है, उसीके अनुरूप उसके सौन्दर्यका उल्लेख हुआ है।

रियाज़— लें वोह दामनमें क्या गुलाबके फूल।
बारे-दामन[1] जिन्हें गुलाबका रंग॥

रंगका उसके पूछना क्या है।
जिसका साया भी दे गुलाबका रंग॥

नाज़ुक कलाइयोंमें हिनाबस्ता मुट्ठियाँ[2]।
शाख़ोपै जैसे मुँह बँधी कलियाँ गुलाबकी॥

असर— अब मैं समझा मुराद जन्नतसे।
आप जिस राहसे गुज़र जायें॥
फूल डूबा हुआ गुलाबमें था।
उफ़! वोह चेहरा हिजाबआलूदा[3]॥
दमे-ख़्वाब[4] है दस्ते-नाज़ुक[5] जबींपर[6]।
किरन चाँदकी गोदमें सो रही है॥

जिगर मुरादाबादी—तूँ जहाँ नाज़से कदम रख दे।
वोह ज़मीं आसमान है प्यारे॥

जलील— निगाह बर्क़[7] नहीं, चेहरा आफताब[8] नहीं।
वोह आदमी है मगर, देखनेकी ताब नहीं॥

---

[1]दामनका बोझ; [2]मेहदी लगी हुई मुट्ठियाँ; [3]शर्मसे भीगा हुआ; [4]सोते हुए; [5]कोमल हाथ; [6]मस्तकपर, [7]बिजली; [8]सूर्य।

दिल— सरे-तूर एक बर्के-हुस्न लहराती नज़र आई।
ज़रा शोख़ीसे झटका था, किसीने अपने दामांको॥

ऐ हुस्न! जो सज़ाये-तमन्ना हो, वह कबूल।
लेकिन तेरी नज़रको फिर इक बार देखकर॥

ईमानकी बात तो यह है कि उसके रूपका वर्णन हो ही नहीं सकता। बकौल 'असगर' गोण्डवी—

अगर ख़मोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद[1]॥

अब चन्द जमालयाती शेर ख़ुदा-ए-सुख़न 'मीर'के तबर्रुकन (प्रसाद-स्वरूप) सुनिए—

नज़र उठती नहीं कि जब सूवां[2]।
सोतेसे उठके आँख मलते हैं॥

यूं अर्क़[3] जलवागर[4] है उस रुख़पर[5]।
जिस तरह ओस फूलपर देखो॥

नाज़ुकी उसके लबकी क्या कहिए।
पंखुड़ी इक गुलाबकी-सी है॥

'मीर' उन नीमबाज़[6] आंखोंमें।
सारी मस्ती शराबकी-सी है॥

पहुँचे हैं कोई उस तने-नाज़ुकके लुत्फ़को।
गो गुल चमनमें जामेसे अपने निकल पड़ा॥

---

[1]सीमित; [2]हसीन [3]पसीना; [4]उजागर; [5]कपोलपर; [6]अधखुली।

शब[1] नहाता था जो वोह रश्के-क़मर[2] पानीमें।
गुथी महतावसे[3] उठती थी लहर पानीमें॥
साथ उस हुस्नके देता था दिखाई वोह बदन।
जैसे झमके है पड़ा गोहरे-तर[4] पानीमें॥

यह चाँदके-से टुकड़े छुपते नहीं छुपाये।
हरचन्द अपने मुँहको बुर्क़में तुम छुपाओ॥

यूसुफसे कोई क्योंकर उस माहको[5] मिला दे?
है फ़र्क़ रात-दिनका अज़दीदा-ता-शुनीदा[6]॥

आँखोंमें ही रहे हो, दिलसे नहीं गये हो।
हैरान हूँ यह शोखी आई तुम्हें कहाँसे?

शम्सो-क़मरके[7] देखे जी उसमें जा रहे हैं।
उस दिल-फ़रोज़के भी रुख़सार ऐसे ही थे॥

गुल भी है महबूब लेकिन कब है उस महबूब-सा।
आगे उस क़दके है सरो-बाग़ बेउसूल बसा॥

रश्क़े-ख़ूबोंका[8] उसीके, जिगरे-महमें[9] है दाग़।
वोह जो एक ख़ाल[10] पड़ा है तेरे रुख़सारके[11] बीच॥

देख उसे हो, मलिकसे[12] भी लग़ज़िश।
हम तो दिलको सम्भाल लेते हैं॥

---

[1]रातको; [2]सौन्दर्य्यमें जिससे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे; [3]चन्द्रमाने; [4]मोती; [5]चन्द्रमुखीको; [6]देखने और सुननेमे; [7]सूर्य-चन्द्रमाके; [8]सौन्दर्यकी ईर्ष्याके कारण; [9]चन्द्रमामें कालिमाका; [10]तिल; [11]कपोलके; [12]देवताने।

लुत्फ़ कहाँ, वोह बात कहेपर, फूलसे झड़ने लग जावें।
सुर्ख़ कली भी गुलकी अगर्चे यारके लाले-लब-सी है॥

जी ही मला जाता है अपना 'मीर' समाँ यह देखेसे।
आँखें मलते उठते हैं, बिस्तरसे दिलवर जब सोकर॥

देखी थी एक रोज़ तेरी मस्त अँखड़ियाँ।
अँगड़ाइयाँ ही लेते हैं अब तक ख़ुमारमें॥

खिलना कम-कम कलीने सीखा है।
उसकी आँखोंकी नीमख़्वाबीसे[1]॥

रोना-बिसूरना

पिछले ज़मानेमें जब इश्क जी का रोग समझा जाता था, तब इश्क़का रोगी शबे-हिज्रमें रोता-बिसूरता था, आहो-नाले करता था और अपने रंजोगमकी दास्तान बड़बड़ाता रहता था। बक़ौल मीर—

कभू 'मीर' उस तरफ आकर जो छाती कूट जाता है।
ख़ुदा शाहिद[2] है, अपना तो कलेजा टूट जाता है॥

रोते फिरते हैं सारी-सारी रात।
अब यही रोज़गार है अपना॥

वर्त्तमानमें इश्क इन्सानके लिए ज़रूरी चीज़ बन गया है। रोने-धोनेसे दामने-इश्कमें धब्बा लगता है—

जिगर मुरादाबादी—इश्ककी अज़मत[3] न हरगिज़ जीते जी कम कीजिए।
जान दे दीजे मगर आँखें न पुरनम[4] कीजिए॥

---

[1]अधखुली; [2]साक्षी; [3]प्रतिष्ठा, महानता, [4]अश्रुपूर्ण।

दिल— मुहब्बत बेअसर उसकी, मुहब्बत रायगाँ[1] उसकी।
कि जिसने उम्रभर पूँछे हैं आँसू अपने दामाँसे॥

रंजो-ग़ममे रोने-धोनेके क्या मानी? मर्द वह है जो इनका हँसते हुए स्वागत करता है। चन्द नमूने मुलाहिज़ा फ़र्मायें—

साकिब— जवाब ज़ख़्मे-जिगर दे रहा है हँस-हँसकर।
"वही तो दिल है कि जो ख़ुश रहे मुसीबतमें"॥

रियाज़— असर बढ़ जाय या रब! इस क़दर सोज़े-मुहब्बतमें।
जहन्नुममें हर अंगारेको समझूँ फूल जन्नतका॥

असर— ग़म नहीं तो लज़्ज़ते-शादी नहीं।
बे असीरी[2] लुत्फ़े-आज़ादी नहीं॥ ✓

फ़ानी— ज़िन्दगी यादे-दोस्त है, यानी—
ज़िन्दगी है तो ग़ममें गुज़रेगी॥✓

मौजोंकी सयासतसे[3] मायूस[4] न हो 'फ़ानी'।
गिरदाबकी[5] हर तहमें साहिल[6] नज़र आता है॥

रस्मे-बेदाद-दोस्त[7] आम हुई।
तल्ख़िये-ज़ीस्त[8] भी हराम हुई॥

यगाना चंगेज़ी— ज़ीस्तके हैं यही मज़े वल्लाह।
चार दिन-शाद[9] चार दिन नाशाद॥

---

[1]व्यर्थ; [2]बन्धनके दु:ख देखे बिना; [3]लहरोंके बढ़नेसे, वेगसे; [4]निराश; [5]भँवरकी; [6]तट, किनारा; [7]प्रियतमाके अत्याचार करनेकी प्रथा; [8]ज़िन्दगीकी कड़वाहट; [9]खुश।

शाद— अपनी हस्तीको ग़मो-दर्द मुसीबत समझो।
मौतकी क़ैद लगा दी है ग़नीमत समझो॥

पुकारकर वहशियोंसे कह दो, "ख़िज़ाँका भी दौर है ग़नीमत।
क़बाके दामनको टाँक तो लें अगर न मौक़ा मिले रफ़ूका"॥

आज़ाद अन्सारी—ग़ैर फ़ानी ख़ुशी[1] अता करदी।
ऐ ग़मे-दोस्त[2]! तेरी उम्र दराज़[3]॥

फ़ानी— तूने करम[4] किया तो ब-उनवाने-रंजे-ज़ीस्त[5]!
ग़म भी मुझे दिया तो ग़मे-जाविदाँ[6] न था॥
ग़म भी गुज़श्तनी[7] है, ख़ुशी भी गुज़श्तनी।
कर ग़मको अख़्तियार कि गुज़रे तो ग़म न हो॥
मेरी हविसको[8] ऐशे-दो आलम[9] भी था क़बूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुःखा हुआ॥

आरज़ू— एक दिलमें ग़म ज़माने भरका क्योंकर भर दिया?
ख़ू-ए-हमदर्दीने[10] कूज़ेमें समन्दर[11] भर दिया॥

दिल— ए दिले-नाकाम रफ़-ए-ग़मकी[12] सूरत है यही।
वाक़ियाते-ज़िन्दगीको[13] भूल जाना चाहिए॥

अर्शी— जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है॥

मुहम्मद 'असर'—हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें[14] ऐसी भी इक शबे-ग़म[15] है॥

---

[1]अमिट प्रसन्नता; [2]प्रियतमाके दुःख, [3]लम्बी; [4]कृपा; [5]जीवनके दुःखो रूपी शीर्षक; [6]स्थायी दुःख, [7]नष्ट होनेवाला; [8]तृष्णा, लालसाको; [9]दोनों जहानके भोग-विलास; [10]विश्व-समवेदनाकी आदतने, [11]गागरमें सागर; [12]ग़म नष्ट करनेका उपाय; [13]जीवन-घटनाको; [14]जीवनमें; [15]दुःखकी रात।

ख़िज़ाँ प्रेमी— ग़म एक इम्तहान था इन्सानके लिए।
जो लोग अहले-ज़ौक़[1] थे, वोह मुसकरा दिए॥

दर्द सईदी—

यह क्यों फ़िज़ापर[2] है यासतारी,[3] यह हर तरफ़ क्यों उदासियाँ हैं?
अभी तो अपनी तबाहियोंपर मैं आप भी मुसकरा रहा हूँ॥

नाज़िश परतापगढ़ी—

वोह तो ख़ैरियत गुज़री जो ग़मने गोद फैला दी।
वर्ना हज़रते-'नाज़िश' कौन आपका होता?
यह लुटा-लुटा-सा आलम, यह उड़ी-उड़ी-सी रंगत।
कहीं छिन न जाय मुझसे मेरे ग़मकी ताज़गी भी॥
मेरे दर्दमें निहाँ[4] है, वोह निशाते-जाँविदानी[5]।
कि निचोड़ दूँ जो आहें तो टपक पड़ें तबस्सुम[6]॥

राज़ रामपुरी—

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है॥

हुरमतुल इकराम—

मुझसे हर बार मसर्रतने[7] छुड़ाया दामन।
मुझको सौ बार दिया ग़मने सहारा ऐ दोस्त!

अज्ञात—

किसको होती है अता[8] इस शानकी बरबादियाँ।
आशियाँ हम क्या बनाते, बिजलियाँ देखा किये॥

---

[1]पारखी; [2]वायुमण्डलमें; [3]निराशा छाई है; [4]छुपी हुई; [5]स्थायी सुख; [6]मुसकान; [7]ख़ुशीने; [8]प्रदान।

पिछले ज़मानेके अक्सर शाइरोंने जहाँ माशूकको कातिल एवं बेवफा[1] चित्रण किया है; वहाँ आशिकको भी बहुत ज्यादा ज़लीलो-ख्वार किया है।[2] यहाँतक कि आशिक़ो-माशूक शब्द इतने घृणित और उपहासास्पद हो गये हैं कि यह भनक पड़ते ही कि अमुक युवक-युवतीका परस्पर इश्क है तो भद्र समाजमें उनपर उँगलियाँ उठने लगती हैं, चेमेगोइयाँ होने लगती हैं, और उन्हें आवारा, उच्छृंखल एवं चरित्रहीन समझ लिया जाता है। यहाँतक कि कुटुम्बी जन उनके अस्तित्वको अभिशाप समझने लगते हैं।

आशिक़-ओ-माशूक़की तसवीर

अब जब कि हुस्नो-इश्कका मर्तबा बहुत बुलन्द तसव्वुर किया जाने लगा है तो आशिको-माशूककी तसवीरें भी उसी मेयारपर बनाई जा रही हैं। पिछले ज़मानेके माशूक विरह-व्यथासे पीड़ित अपने आशिककी

---

[1]दाग़— अपने बिस्मिलका सर है जानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं॥

मोमिन— दरबाँको आने देनेपै मेरे न फौजे कत्ल।
वर्ना कहेंगे सब कि यह कूचा हरम न था॥

[2]ग़ालिब— दे वोह जिस कदर ज़िल्लत हम हँसीमें टालेंगे।
बारे-आश्ना निकला उनका पासबाँ अपना॥

वाँ जो पहुँचा भी तो उनको गालियोंका क्या जवाब।
याद थीं जितनी दुआएँ सर्फ़े दरबाँ हो गईं॥

दाग़— देखते ही मुझे महफिलमें उन्हें ताब कहाँ?
खुद खड़े हो गये कहते हुए "बाहर-बाहर"॥

अज्ञात— कल जो उठते थे बिठानेके लिए।
आज बैठे हैं उठानेके लिए॥

परिचर्या करना तो दरकिनार उनकी मिज़ाज पुर्सीको आना भी शायाने-शान नही समझते थे।

तसलीम— गर उन्हें है ख़ौफ़ अर्ज़े-आरज़ू।
दूरसे आकर तमाशा देख लें॥

लेकिन इश्क अगर सादिक है तो नामुमकिन है कि माशूकको उस चाहतका पता न लगे और आशिकके रंजो-गममे उसकी आँखे न डबडबा आयें—

साकिब— नज़अ़[1] इक ईद है, वोह रोते हुए आये है।
ऐ दिले-ज़ार! यही वक़्त है मर जानेका॥

अर्शी— अब देखिए पहुँचती है बरबादियाँ कहाँ?
उनकी हसीन आँखोंमें अश्क आ गये है आज॥

अज्ञात— तेरी आँखोंसे यह आँसूका ढलकना तौबा!
मैंने गिरती हुई कौनैनकी[2] किस्मत देखी॥

वर्त्तमान युगीन शाइर जहाँ सुशीला, सहृदया और नेक प्रेयसीका चित्रण कर रहे हैं; वहाँ प्रेमीके बेलौस प्रेम और स्वाभिमानी व्यक्तित्वका भी नक़्शा उभार रहे है। यह माना कि प्रियतमा ही काबा-ओ-काशी है। उसकी यादमें लीन रहना ही नमाज़ो-उपासना है। मगर प्रेमी भी तो आख़िर मनुष्य है। वह प्रियतमाकी चाहतमें मर मिटेगा, जीवनभर सुलगता रहेगा; किन्तु जानबूझकर की गई उपेक्षा या तौहीनको वह नही सह सकेगा। वह मनुष्य है और मनुष्यताका अपमान सहन करना मनुष्यता नही, पशुता है। इस हीन स्थितिमे वह किसी भी कीमतमें रहनेको प्रस्तुत नही।

---

[1]मृत्यु-पल; [2]ससारकी।

आनन्दनारायण मुल्ला—

तूने फेरी लाख नरमीसे नज़र।
दिलके आईनेमें बाल आ ही गया॥*
किसीके पाँवका रौंदा हुआ नहीं 'मुल्ला'।
वोह् है तो गर्द, मगर राहे-कारवाँमें नहीं॥

शाद अज़ीमाबादी—

दिले-मुज़तरिब! तुझे क्या कहूँ, अबस उनके पाँवपै सर रखा।
जो ख़फ़ा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह् आदमी थे, ख़ुदा न थे॥†

जिगर— हमसे नज़र फेर ली उस शोख़ने।
हम भी हैं इन्सान ख़फ़ा हो गये॥‡

फ़ानी— रस्मे-ख़ुद्दारीसे गो वाकिफ़ न थी दुनियाए-इश्क़।
फिर भी अपना ज़ख़्मे-दिल शर्मिन्द-ए-मरहम न था॥

आरज़ू— उनकी बेजा भी सुनूँ आप बजा भी न कहूँ।
आख़िर इन्सान हूँ मैं भी, कोई दीवार नहीं॥

---

*मीर— याँ अपने जिस्मे-ज़ारपै तलवार-सी लगी।
उसने जो बेदमाग़ीसे अबरूको ख़म किया॥

†मीर— ख़ाक ऐसी आशिक़ीपर ठुकराये भी गये कल।
पाँवों फने-से उसके पर 'मीरजी' न सरके॥

‡मीर— दाहन सलूक था तो उठाते थे नर्म-गर्म।
काहेको 'मीर' कोई दबे जब बिगड़ गई॥
जाना ख़राब 'मीर' भी कितना ग़यूर था?
मरते मुआ पर उसके कभू घर न जा फिरा॥

यगाना— वन्दगीका सवूत दूँ क्योंकर?
इससे वेहतर है कीजिए इनकार॥

जव स्वाभिमानका यह आलम है कि वन्दगीका सवूत चाहे जानेपर वन्दगीसे भी इनकार कर दिया जाता है। तव उसका स्वाभिमानी व्यक्तित्व किसीका भी एहसान कैसे उठाये और क्यो किसीसे याचना करे?

साक़िब—✓पेशे-अरवावे-करम[1] हाथ वोह क्या फैलाता?
जिसको तिनकेका भी एहसान गवारा न हुआ॥*

नियाज— ✓ हमें ख़ुदाके सिवा कुछ नज़र नहीं आता।
निकल गये हैं वहुत दूर जुस्तजूसे हम॥

असर— रहमपर ग़ैरके जीना कैसा?
जिन्दगीका यह करीना कैसा?

आरजू— दरे-दिल[2] 'आरज़ू'! दरवाज-ए-कावेसे वेहतर था।
यह ओ ग़फलतके मारे! तूने पेशानी कहाँ रख दी?
धूप सह लेना अच्छा, वारे-एहसाँ[3] कौन उठाय।
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिए॥
माँग जो खोके आन-वान न माँग।
क़त्ल हो जा मगर अमान[4] न माँग॥
आलूदगी-ए-गर्दे-तमासे[5] ख़ुदा वचाय।
जाते हैं झाड़ते हुए दामन चमनसे हम॥

---

*मीर— ✓ आगे किसीके क्या करें दस्ते-तमअ[1] दराज।
यह हाथ सो गया है सिराहने धरे-धरे॥

[1]इष्ट-मित्रोके सामने; [2]हृदय-द्वार, [3]एहसानका वोझ; [4]जीवन-रक्षा; [5]अभिलापा-रूपी धूलकी लिप्सासे।

---

[1]अभिलापाका हाथ।

यगाना— आँखे नीची हुई अरे यह क्या?
क्यों ग़रज़ दरमियानमें आई?
बन्दा वोह जो दम न मारे।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे॥

अदीब मालीगाँवी—

✓अपना अदाशनास बन, अपना जमाल भी तो देख।
तुझमें कमी है कौन-सी, तुझमें कमी कोई नहीं॥

कौसर कुरैसी—मुझे आता है 'कौसर' हश्रगाहोंमें गुज़र जाना।
मैं इन्सां हूँ, मेरी तौहीन है, घुट-घुटके मर जाना॥

अपने प्यारेका विरह नारकीय यन्त्रणासे भी अधिक दुःखद होता है। हर प्रेमीकी अभिलाषा रहती है कि वह अपने प्यारेके पास निरन्तर बैठा रहे, एक क्षणको भी पृथक् न रहे, परन्तु विधिका विधान ही कुछ ऐसा है कि वियोग ही जीवनभर सहना पड़ता है, मिलन यदि होता भी है तो क्षणिक होता है। पिछले शाइरोंमें बहुतोंने विरहपर बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण कहा है जिसे सुनकर सहानुभूति उदित होनेके बजाय खीज-सी होती है। कोई विरह-व्यथा सहते-सहते इतने दुर्बल हो गये हैं कि बकौल किसीके—

हिज्रे-यार

बिस्तरपै ढूंढती फिरी शबभर कज़ा मुझे

कोई विरह-ज्वालामें इतने तप रहे हैं कि बकौल 'अमीर मीनाई'—

फूल गर मुरझाये तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ले सबा चलनेको मैं, चलता हूँ गुलशनकी तरफ़॥

कोई विरह-व्यथामें ऐसे खोये गये हैं कि जड़-मूर्ति समझकर परिन्दोंने उनके सरपर घोंसले बना लिये हैं। बकौल आरिफ़—

जालकर मजनूँ मुझे एक लैलि-ए-गुलफ़ामका।
आके बुलबुलने बनाया आशियाँ बालाए-सर॥

अब आधुनिक युगके चन्द स्वाभाविक शेर विरहपर दिये जा रहे हैं—

अर्शी—बेताबिये-दिलके उन नाज़ुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे।
जब अहदे-मुहब्बत होते ही फ़ुरक़तका ज़माना आ जाये॥

असर—　फिर न आये जो वादा करके गये।
आजका दिन है और वोह दिन है॥
याद करले भूलनेवाले मेरे।
अब तो बिछुड़े एक मुद्दत हो गई॥

जलील—　तुम जो याद आये तो सारी कायनात[1]।
एक भूली-सी कहानी हो गई॥
क़ासिद! पयामे-शौकको देना न बहुत तूल।
कहना फ़कत यह उनसे कि "आँखें तरस गईं"॥

'शाद' अज़ीमाबादी—
शबे-हिज्राँकी सख़्ती हो तो हो, लेकिन यह क्या कम है।
कि लबपै रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

हसरत—　कहीं वोह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ़।
कहीं क़ुबूल न हो जाय इल्तजा[2] मेरी॥

नसरीं—　वाह क्या कैफ़े-तसव्वुर[3] है कि अक्सर हिज्रमें।
यूँ हुआ महसूस गोया वोह अचानक आ गये॥

---

[1]दुनिया;　[2]इच्छा, प्रार्थना;　[3]ध्यानावस्था।

अज्ञात— रुख़सतके वाक़ियातका इतना तो होश है।
देखा किये हम उनको जहाँतक नज़र गई॥

दरतक तो आ चुके थे, मगर आके फिर गये।
ऐ जज़्बे-दिल! असरमें कहाँपर कमी रही॥

नदीव मालीगाँवी—

उस जाने-बहाराँने[1] जबसे मुँह फेर लिया है गुलशनसे।
शाख़ोंने लचकना छोड़ दिया, ग़ुंचे भी चटख़ना भूल गये॥

एक ख़ातून— वे तुम्हारे में जी गई अबतक।
तुमको क्या ख़ुद मुझे यक़ीन नहीं॥*

नशी— तेरी नीची नज़रकी यादका आलम अरे तौबा!
चुभोकर दिलमें जैसे तोड़ डाले कोई पैकाँको[2]॥
आग़ाज़े-आशिक़ीका[3] अल्लाहरे ज़माना।
हर बात बहकी-बहकी हरगाम बालहाना॥

पुरानी ग़ज़लोंमें निराशा एव असफलता (यास-ओ-हिरमान) की बहुत अधिक भरमार है। वे शाइर भी जो जीवन पर्यन्त ऐश करते रहे; ता-उम्र निराशाके गीत गाते रहे हैं।

यास-ओ-हिरमान

अक्सर पुराने शाइरोंने जीवनके बजाय मृत्यु चाही†। प्राय सभीने पुरुषार्थके बदले अकर्मण्यताको अहमियत

---

[1]बहाररूपी प्रियतमाने, [2]तीरको; [3]प्रेमासक्तिका प्रारम्भ।

*मीर— इश्क़में वस्लो-जुदाईसे नहीं कुछ गुफ़्तगू।
कुर्बो-बाद[1] उस जा बराबर है, मुहब्बत चाहिए॥

†ग़ालिब— मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी।
मौत आती है, पर नहीं आती॥

---

[1]नज़दीकी-दूरी।

दी†। लेकिन अब करो या मरोका युग है। अकर्मण्योको सावधान करते हुए 'यगाना' चंगेजी फर्माते हैं—

खुदा ऐसे बन्दोंसे क्यों फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है॥

जो हाथ-पाँव नही हिलाता, उसके मुँहमे ग्रास देने ईश्वर भी नही आता। जो पुरुषार्थ करते है, उन्हे सहायक मिल ही जाते है। इसी भावको 'यगाना' चगेजी यूँ व्यक्त करते हैं—

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजो-ग़म, दामनसे पहिले आस्तीं होती॥

जो व्यक्ति असफलताओसे निराश हो बैठते है, उनके लिए यह अशआर देखिए कितने प्रेरणादायक हैं—

शाद अज़ीमावादी—

यह मुमकिन हैं कि लिक्खी हो क़लमने फतह आखिरमें।
जो हैं अहवावे-हिम्मत ग़म नहीं करते शिकस्तोंमें॥

दत्तात्रिय कैफ़ी—हाँ-हाँ मगर ऐ दोस्त! तू तद्बीर किये जा।
यह भी तेरी तक़दीरके दफ़्तरमें लिखा है॥

जो स्वय नही उठता, उसे कोई भी सहारा नही देता। इसी भावको 'शाद' अज़ीमावादी देखिए किस खूबीसे रिन्दाना अन्दाजमें पेश करते हैं—

समझता है इस दौरमें कौन किसको?
करें रिन्द खुद एहतराम[1] अपना-अपना॥

---

†आतश—किस्मतमें जो लिखा है, वोह आयेगा आपसे।
फैलाइए न हाथ न दामन पसारिए॥

[1]आदर-सत्कार।

जो कौमें स्वय अपनी प्रतिष्ठाएँ बढ़ानेका प्रयत्न नही करती, उनकी आजतक किसी दूसरी कौमने इज्जत नही की। 'शाद' अज़ीमावादीने कितना तथ्यपूर्ण भेद बतलाया है—

यह बज़्मे-मै[1] है याँ कोताहदस्तीमें है महरूमी[2]।
जो बढ़कर खुद उठा ले हाथमें मीना उसीका है॥

समय रहते जो कर लिया सो ही थोड़ा—

क्या ग़लत जोम है, बाद अपने किसे ग़म अपना।
हाथ काबूमें है कर ले अभी मातम अपना॥

यह हमारी कम हिम्मती अथवा अकर्मण्यता है जो हम इस शोचनीय स्थितिमें है। अन्यथा वकील 'शाद' अज़ीमावादी—

हिम्मते-कोताहसे[3] दिल, तंगे-ज़िन्दाँ[4] बन गया।
वर्ना था घरसे सिवा, इस घरका हर गोशा[5] वसीअ[6]॥

सफ़ी लखनवी—इन्सान मुसीबतमें हिम्मत न अगर हारे।
आसांसे वोह आसां है, मुश्किलसे जो मुश्किल है॥
दुनियाकी तरक्क़ी है इस राज़से[7] वाबस्ता[8]।
इन्सानके क़ब्ज़ेमें सब कुछ है अगर दिल है॥

असर लखनवी—कौन कहता है कि मौत अंजाम[9] होना चाहिए।
ज़िन्दगीका ज़िन्दगी पैग़ाम होना चाहिए॥

नज़ीर बनारसी—जा-ज़ाके शिकस्त फ़तह पाना सीखो।
गिरदाबमें[10] घर-कहा लगाना सीखो॥

---

[1] मधुशाला, [2] पीछे हाथ रखनेसे वचित रह जाओगे; [3] कम-हिम्मतीकी वजहसे दिल, [4] सकीर्ण बन्दीगृह, [5] कोना; [6] विस्तृत, [7] भेदसे, [8] सम्बन्धित; [9] परिणाम, [10] भॅवरमें।

शाद अज़ीमाबादी— नज़र आये न आये कोई आँसू पूछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ वेकसी ! दीवारो-दर देंगे ॥

आनन्दनारायण मुल्ला—कवतक किसीसे माँगकर हम अख़्तियार लें ?
अव जीमें है कि शेरसे लड़कर कछार लें ॥

पुरानी शाइरीमें रकीवो[1] (अदूओ) की वहुत भरमार रही है। अक्सर यही माशूककी नज़रे-इनायतके हकदार होते थे। माशूक इन्हे महफिलोमे अपने नज़दीक विठाते थे। सवके सामने प्यार-ओ-मुहव्वतका इजहार करते थे और अपने हकीकी चाहनेवाले आशिककी तरफ रुख भी नही करते थे। उन्हे महफिलमे वुलाना तो दरकिनार अपने कूचेमे भी नही फटकने देते थे। और मसलहतन कभी महफिलमें वैठने भी दिया तो उनके सामने ही रकीवसे इजहारे-उल्फत करते थे और वेचारे आशिक उनकी इन हरकतोको देख-देखकर कुढते थे। इसी कुढ़न, गैरत, जलन, ईर्ष्या, स्पर्द्धा आदिको 'रकावत' कहते है।

रक़ावत

वर्त्तमान युगमें रकावतकी वह लानत खत्म होती जा रही है। क्योंकि जव माशूका पाकदामाँ और वावफा होती जा रही है, तव रकीवो-अदूका खयालो-ख्वाव भी नही आ सकता।

पृ० १२६ मे यह उल्लेख हुआ है कि उर्दू-शाइरीमे वाज़ारी माशूक़का तसव्वुर फारसी शाइरीके अन्ध-अनुकरणकी वजहसे भी आया। यदि उर्दू-शाइरोने फारसीके वजाय अरवीका अनुसरण किया होता तो वुलहविस आशिको एव हरजाई माशूकोसे उर्दू-शाइरीका दामन वेदाग रहा होता।

मिर्जा गालिव फारसीका अनुसरण करते हुए फर्माते है—

---

[1]माशूकका दूसरा चाहनेवाला, जिसे माशूक भी प्यार करे, उसे रकीव, अदू, गैर, मुद्दई, दुश्मन आदि कहा जाता है।

कयामत है कि होवे मुद्दईका हमसफर, 'ग़ालिब'!
वोह काफिर जो खुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे[1]॥

इस शेरमें साफ़-साफ़ हरजाई माशूकका ज़िक्र हुआ है। 'मीर' अरबी-नस्ल था। अब देखिए उसके यहाँ यही मज़मून कितने पाकीज़ा सलीकेसे नज़्म हुआ है—

इश्क उनको है, जो यारको अपने दमे-रफ़्तन।
करते नहीं ग़ैरतसे ख़ुदाके भी हवाले[2]॥

'मीर'की प्रेयसी पवित्र एवं सती है, किन्तु वह इतनी अनुपम, लावण्य-वती और यकता है कि किसीपर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे देखकर संभव है खुदाकी नीयत भी ऐन-गैन हो जाय।

'मीर'का कमाल यह है कि वह अपनी प्रेयसीको शंकित दृष्टिसे नहीं देखते। मगर उनकी हिन्दुस्तानी ग़ैरत इजाज़त नहीं देती कि उनके सिवा कोई दूसरा उसे मुहब्बतकी नज़रसे देखे। चाहे वह खुदा ही क्यों न हो। उन्हें अपने माशूककी पाकदामनीपर पूरा एतमाद है। मगर दूसरो-की नीयतपर यकीन नहीं। वे उस पाश्चात्य सभ्यताके कायल नहीं, जो अपनी पत्नियोंको दूसरोंके साथ नाचते-हँसते-खेलते देखकर खुश होते हैं। अपनी प्रेयसीपर 'मीर' किसीकी भी कुदृष्टि नहीं पड़ने देना चाहते। उनके सिवा कोई और भी उनकी प्रेयसीको चाहतकी दृष्टिसे देखने लगे, यह बेग़ैरती वे बरदाश्त करनेको तैयार नहीं।

---

[1] ऐ गालिब! मेरे लिए तो आज प्रलयका दिन है। मेरे जैसा शंकित हृदय अपनी जिस प्रेयसीको खुदाके हवाले करते हुए भी झिझकता, वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीके साथ भ्रमणको निकली है।

[2] पवित्र और स्थायी प्रेम उन्हींका है जो स्वाभिमानवश अपनी प्रेयसीको खुदाके संरक्षणमें भी रखनेको प्रस्तुत नहीं होते। रकीबका तो ज़िक्र ही क्या?

हम देखें तो देखें उसे, फिर पर्दा बेहतर है यानी—
और करें नज्जारा उसका, हमको यह मजूर नहीं॥

यहाँतक कि 'मीर' अपनी प्रेयसीको पत्र भी नही लिखते। क्योंकि वे जानते है कि पत्र-वाहककी नीयत भी फिसल सकती है—

खत लिखके उसको सादा न कोई मलूल हो।
हम तो हों बदगुमान जो क़ासिद रसूल हो॥

रकावतपर 'मोमिन'का यह शेर मशहूर है—

उस नक़्शे-पाके सज्देने क्या-क्या किया जलील।
मैं कूच-ए-रक़ीबमें भी सरके बल गया[1]॥

'मोमिन'के यह बहुत बहतरीन शेरोमें-से एक है। इसी मजमूनको 'गालिब'ने यूँ जाहिर किया है—

जाना पड़ा रकीबके दरपर हजार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुजरको मैं॥

'गालिब' कूचये-रक़ीबमे अपने माशूकके नक़्शे-पाका सजदा करते हुए नही जाते है। वे तो महज बदगुमानी और रकाबतकी वजहसे कूचये-

---

[1]प्रेयसी प्रतिद्वन्द्वीके घर थी। अतः उसके चरणचिह्नोको सजदा करते हुए मुझे प्रतिद्वन्द्वीके घरतक जाना पड़ा। प्रेयसीके चरण-चिह्नोको सजदा देना प्रेम-धर्म है। इससे तो मुझे प्रसन्नता हुई, परन्तु मलाल तो इस बातका है कि मुझे सजदा करते हुए शत्रुके दर्वाजेतक जाना पडा, जो मेरी गैरतको गवारा नहीं था। जिल्लतका सबब यह हुआ कि रकीबके कूचेमे सरके बल जानेसे लोग समझे कि रकीबसे रहमका ख्वाहिशमन्द है और उसके कूचेमे नाक रगडता है।

रकीबमें जाते हैं। ताकि वहाँ माशूकको रँगे-हाथ देखकर उसे जलीलो-ख्वार कर सकें।

मगर किसी भी भले और शरीफ आशिककी गैरत यह कब गवारा करेगी कि वह अपने माशूकको किसी गैरके पहलूमे खुद अपनी आँखोंसे देखे। वह मर जाना पसन्द करेगा, मगर ऐसे जलील मंजरको देखना पसन्द नही करेगा। अब 'मीर'की खुद्दारी देखिए—

इतना रकीबे-खानाबर अन्दाजसे सलूक?
जब आ निकलते हैं, यह सुनते हैं कि घर नहीं॥

बदगुमानी और रश्कका यह हाल है कि 'मीर' नही चाहते कि माशूका कहीं जाय। वह किसी भी कामसे ख्वाह अपनी रिश्तेदारीमे ही जाती है। 'मीर'को रकीबके यहाँ जानेका शक होता है। क्योंकि आशिक शक्की मिजाज होता है। मगर खुद्दार एव स्वाभिमानी इतने हैं कि उसकी टोह लेनेके लिए कहीं नहीं जाते।

'मीर'का एक शेर और दिया जा रहा है। मगर इस शेरसे लुत्फ अन्दोज वही हो सकेंगे, जिन्होंने ३०-३५ वर्ष पूर्वका जमाना देखा है। जब कि शादीसे पूर्व पत्नीका मुख देख सकना असभव था। कई-कई बच्चे हो जानेपर भी पत्नीके मायकेमे उसके दीदार नसीब नहीं होते थे। पत्नीकी एक झलक दिखा देनेके लिए सालियों-सलेहजोंकी खुशामदे की जा रही है। सरदर्दका बहाना करके पडे हुए हैं। मगर क्या मजाल जो पत्नीकी झलक किसी दीवारो-दरके सूराखसे भी नजर आ जाय। दिल उसे देखनेको तड़प रहा है, मगर अन्तरग यही चाहता है कि मेरी पत्नी इतनी लज्जाशील और बा-हया हो कि वह मुझे दिखाई न दे। अन्यथा उसके पीहरवाले उसे बेहया कहेंगे, और उनकी गैरत और मर्दानगीको यह गवारा नहीं कि उसकी पत्नीपर कोई नुक्ताचीनी करे। अत. ऊपरसे मिलनेका प्रयत्न करते हुए भी वह नहीं चाहता कि उसकी पत्नी सामने आये।

इसीतरह पत्नी भी नही चाहती कि उसके पतिपर कोई उँगली उठाये। वह भी अपने पतिकी आँखोंमें लाजका पानी चाहती है। उसके पतिने अपने बड़ोके सामने असावधानीवश बच्चा गोदमे ले लिया तो एकान्तमे व्यग्य करते हुए चेतावनी दी कि तुमने यहाँ तो बच्चेको गोदमें ले लिया, कही मेरे पीहरमे ऐसी भूल न कर बैठना, वर्ना माँ-भावज मुझे चूँट-चूँट खायेंगी।"

अब 'मीर'का शेर मुलाहिज़ा फ़र्माएँ—

दाग़ हूँ रश्के-मुहब्बतसे कि इतना बेताब।
किसकी तसकींके लिए घरसे तू बाहर निकला?

अपने प्यारेका आगमन सुनकर उसे देखनेकी आतुरतामें वदहवासीसे प्रियतमा बाहर निकल आई है। उसकी यह हरकत प्रेमीकी धारणाके विपरीत हुई। क्योंकि वह तो अपनी प्रियतमाको असूर्यम्पश्या समझता था। हज़ार प्रयत्न करनेपर भी झलक दिखेगी या नही। यही शंकित हृदय लेकर वह आया था। मगर यहाँ आकर उसे कुछ दूसरा ही आ़लम नज़र आया। आशिक आखिर—आशिक है, शक्की उसका स्वभाव है। वह यह तो कल्पना भी नही कर सकता कि उसकी प्रेयसी इतनी निर्लज्ज है कि उसे देखनेको भी बाहर आ सकती है। शक्की स्वभावके कारण वह सशंकित हो उठता है और माशूकसे बेताबीमे पूछ बैठता है—

किसकी तसकींके लिए घरसे तू बाहर निकला[1]?

सामयिक घटनाएँ

गज़लपर एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि उसमें सामयिक घटनाओंका उल्लेख नही मिलता। यह आक्षेप किसी हदतक ठीक है। क्योंकि गज़लका निर्माण जिन तन्तुओंसे हुआ है, उनका मेल इस तरहकी शाइरीसे नही बैठता। गज़लका अस्तित्व चिरकालतक होना चाहिए, इसलिए उसमे

---

[1]ध्यान रहे उर्दू-शाइरीकी प्रथाके अनुसार माशूकके लिए प्रयुक्त क्रिया आदि पुल्लिग लिखे जाते हैं।

उन घटनाओंको नज़्म करनेसे परहेज़ किया जाता है, जो आँधीके समान बढ़ती-घटती हैं।

फ़ारसीके मशहूर शाइर हाफ़िज़के जीवनकालमें उसका देश ५ बार विजित हुआ। कभी किसी विजेताने उसे वीरान कर दिया। कभी किसीने उसे चमन बना दिया। विजेता आँधी-तूफ़ानकी तरह आये और विलीन हो गये। हाफ़िज़ने यह सब इन्क़लाब अपनी आँखोंसे देखे। मगर एक भी घटनाका उल्लेख उन्होंने अपनी शाइरीमें नहीं किया। फिर भी क्यों उनकी शाइरी इतनी बुलन्द और प्रभावशाली है कि सदियाँ गुज़र जाने-पर भी उसी तरह तरो-ताज़ा बनी हुई है? बार-बार पढ़नेपर भी मन लालायित बना रहता है।

इसका कारण यही है कि उन्होंने जो इन्कलाब अपने जीवनमें देखे, उन्हें देखकर वे बिलखे नहीं। चुपचाप सहते गये और स्वयं साकार व्यथा बन गये। परिणाम इसका यह हुआ कि जो भी बोल व्यथित हृदयतन्त्रीसे निकला अमर हो गया।

समुद्र-मन्थनसे निकले हुए विषको देखकर बाबा भोलेनाथ चीख उठते तो उन्हें महादेव कौन कहता? महादेव तो वे तभी समझे गये, जब संसारका ज़हर वे स्वयं पीकर बैठ गये।

नज़्म-गो और ग़ज़ल-गो-शाइरोंमें यही अन्तर है। नज़्म-गो शाइर आपदाओंको देखकर उनसे प्रभावित होता है, और जो देखता है, उसे बढ़ा-चढ़ाकर दूसरोंपर ज़ाहिर करता है। ग़ज़ल-गो शाइर आपदाओंको अपनेमें जज़्ब कर लेता है, फिर जो जज़्बात उनके मुँहसे प्रस्फुटित होते हैं। वही ग़ज़ल कहलाते हैं।

उर्दूके अमर शाइर मीर, ग़ालिब ऐसे ही शाइर हुए हैं। उनके जीवन-कालमें बादशाहतें मिटीं, दिल्ली लुटी, और न जाने कितने इन्क़लाब आये। सब उतार-चढ़ाव अपनी आँखोंसे देखे। निरुपाय बने घुटते रहे, मिटते रहे।

उन इन्कलाबातने जो हश्र वरपा किया, उनके वारेमें 'मीर' इतना कहकर चुप हो गये—

दीदनी है शिकस्तगी दिलकी[1]।
क्या इमारत ग़मोने ढाई है॥

और गालिव इससे ज्यादा क्या कहते?—

चिरागे-मुर्दा हूँ मै बे-ज़वाँ गोरे-ग़रीवाँका[2]

उनके जीवनमें जितनी मुसीवते आ सकती थी, आई। वे मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहे—

हो चुकीं गालिव! वलाएँ सव तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है॥

लेकिन ऐसा भी नही है कि गज़लगो शाइरोने सामयिक घटनाओपर कुछ भी नही कहा हो! कहा है, परन्तु वहुत सक्षेपमे और नपे-तुले शव्दोमें। 'मीर'के जीवनकालमें कादिर रहीलाने शाहआलम वादशाहकी आँखोमें नीलकी सलाइयाँ फेरकर उन्हे ज्योतिहीन कर दिया था। इस दर्दनाक घटनाको 'मीर'ने अपनी गजलके एक शेरमे यूँ व्यक्त किया है—

शहाँ कि कुहले-जवाहर थी ख़ाके-पा जिनकी।
उन्हींकी आँखोंमें फिरती सलाइयाँ देखी[3]॥

इस घटनाको 'मीर'ने इतने सक्षेपमें वयान किया है, कि कुछ कहनेको शेप नही रहा। इसी घटनाको इकवालने नज्ममे प्रस्तुत किया है, जिसमें काफी अशआर है।

---

[1]दिलकी ववादी देखने योग्य है; [2]खामोश क़व्रका वुझा हुआ दीपक; [3]जिन वादशाहोंकी पाँवकी खाक जवाहरका सुर्मा समझी जाती थी, उन्ही वादशाहोकी आँखोमे सलाइयाँ फिरती देखी गई।

वर्त्तमान युगीन ग़ज़लगो शाइरोंमें यह भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है कि ग़ज़लमें भी सामयिक घटनाओं, लोकोपयोगी कार्यों और अन्य आवश्यक विषयोंका समावेश किया जाय, ताकि गज़ल अधिक-से-अधिक उपयोगी और समृद्धिशाली बन सके और वह मानसिक भूख मिटानेके अतिरिक्त भी हर तरहसे जीवनोपयोगी बने। इसतरहके हज़ार-हा शेर 'शेरो-सुख़न'के चारों भागोंमें मिलेंगे। विषयको स्पष्ट करनेके लिए चन्द शेर शीर्षकके साथ यहाँ दिये जा रहे हैं; ताकि उस तरहके अशआर पुस्तकमें सुगमतापूर्वक खोजे जा सकें। साथ ही गज़लका शेर अपने अन्दर कितने भाव रखता है, यह भी दृष्टि प्राप्त हो सके।

नैतिक

असर लखनवी—ईमाँ ग़लत उसूल ग़लत, इद्दआ[1] ग़लत।
इन्साँकी दिल दही[2] अगर इन्साँ न कर सके॥

✓ वोह काम कर बुलन्द हो, जिससे मज़ाके-ज़ीस्त[3]।
दिन ज़िन्दगीके गिनते नहीं माहो-सालसे॥

क्या-क्या दुआएँ मांगते हैं सब मगर 'असर'।
अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ[4] न हो॥

नरम तबातबाई— फ़ाबूसे नफ़्से-बदको[5] निकलने कभी न दो।
फिर शेर है जो यह सगे-दीवाना[6] छुट गया॥

एहसान ले न हिम्मते-मर्दाना छोड़कर।
रस्ता भी चल तो सब्ज़-ए-बेगाना[7] छोड़कर॥

---

[1]दावा; [2]दिल रखना, [3]जीवनका लक्ष्य, [4]इच्छा; [5]बुरी आदतको; [6]पागल कुत्ता, [7]हरीभरी घासको।

आरज़ू लखनवी—

फैल गई वालोंमे सुफेदी, चौंक जरा करवट तो वदल।
शामसे ग़ाफ़िल सोनेवाले ! देख तो कितनी रात हुई ॥

इज्ज़त कुछ और शै है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूँ तो यहाँ ख़ुरोसके[1] सरपर भी ताज है ॥

शवनमके[2] आँसुओंपर क्या हँस रहे हैं ग़ुंचे[3]।
उनसे तो कोई पूछे कवतक हँसा करेंगे ?

मिले भी कुछ तो है वहतर तलवसे इस्तग़ना[4]।
वनो तो शाह वनो, 'आरज़ू' गदा[5] न वनो ॥

हुस्ने-सीरतपर[6] नज़र कर, हुस्ने-सूरतको[7] न देख।
आदमी है नामका गर ख़ू[8] नहीं इन्सानकी ॥

ग़ुवार उठता है यह कहता हुआ गोरे-ग़रीवांसे[9]।
"जहाँमें एक दिन सवका यही अंजाम होना है ॥"

ग़म दिया है कि मसर्रत दी है, सवमें इक तरहकी लज़्ज़त दी है।
हँस न इतना कि ख़ुशी ग़म हो जाये, शै हरइक हस्ब ज़रूरत दी है ॥

शाद अज़ीमावादी—

गुलोंने ख़ारोंके छेड़नेपर सिवा ख़ामोशीके दम न मारा।
शरीफ उलझें अगर किसीसे तो फिर शराफ़त कहाँ रहेगी ॥

हवाये-दहर[10] विगाड़े हज़ार फूलोंको।
न हो वोह रंग शराफतकी कुछ तो वू होगी ॥

---

[1]मुर्ग़के; [2]ओसके; [3]कलियाँ; [4]सन्तोप; [5]भिक्षुक; [6]सुन्दर स्वभाव-पर; [7]सुन्दर मुखको, [8]स्वभाव, [9]कब्रिस्तानसे, [10]दुनियाकी हवा।

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया।
तअ़ाज्जुब है कि तो भी ज़ुमर-ए-इन्सांमें[1] नाम आया॥

बशरके दिलमें न पड़ता जो आरज़ूका दाग़।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता॥

भलाई इसलिए चाही कि हों भले मशहूर।
ग़रज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम॥

गुलोंपर क्या है, कांटों तकका मैं दिलसे दुआ गो हूँ।
ख़ुदा बन्दा! न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका॥

यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा॥

मुर्दोंकी कनाअतोंपै[2] है रश्क[3]।
पहने रहे इक कफ़न हमेशा॥

अनवर साबरी—अम्ने-आलम[4] तो मुश्किल नहीं है।
आदमी, आदमी हो तो जाये॥

मग्र लहसनी— ग़मो-दर्दपै बढ़के कब्ज़ा जमाले।
कि इसपर नहीं मुनइमोंका[5] इजारा[6]॥

अगर सब भी ज़िल्लतमें गुज़रे तो ज़िल्लत।
ख़ुदी भी हमारी ख़ुदा भी हमारा॥

असग़र मलीहाबादी— चमनमें बहे लाख शबनमके आँसू।
कली सीखती ही रही मुसकराना॥

---

[1]मनुष्योंकी श्रेणीमें, [2]सन्तोषपर; [3]ईर्ष्या, [4]विश्वशान्ति; [5]धनिकोंका, [6]दावा, अधिकार।

असद भोपाली—'असद' चलो कि बदल दें हयातकी[1] तक़दीर।
हमारे साथ ज़मानेका फ़ैसला होगा॥

ख़लिश दर्दी— खेलते हैं जो मज़लूमोंकी[2] जानोंसे।
हैवान अच्छे हैं ऐसे इन्सानोंसे॥

दर्द सईदी टोंकी—अभी आदमी-आदमीका है दुश्मन।
अभी ख़ुदको समझा नहीं आदमीने॥

जहाँ सैंकड़ो बुतकदे[3] ढा दिये हैं।
ख़ुदा भी तराशे हैं कुछ बन्दगीने॥

आनन्दनारायण मुल्ला—
ख़ूने-जिगरके क़तरे, और अश्क बनके टपकें?
किस कामके लिए थे, किस काम आ रहे हैं?

ख़ुदापर व्यंग्य

नक्श सहराई— सफीनेका[4] नहीं, मुझको यह ग़म है।
जो शह दे[5] नाख़ुदाको,[6] वोह ख़ुदा क्या॥

यगाना चंगेज़ी—आई को टाल दे जभी जानें।
दम-ब-ख़ुद है तो फिर ख़ुदा क्या है॥

बिस्मिल सईदी—
इलाही दुनियामें और कुछ दिन अभी क़यामत न आने पाये।
तेरे बनाये हुए बशरको[7] अभी मैं इन्साँ बना रहा हूँ॥

---

[1]ज़िन्दगीकी; [2]सताये हुओंकी; [3]मन्दिर; [4]नावका; [5]संकेत, इशारा; [6]मल्लाहको; [7]आदमीको।

उपासनाएँ

बिस्मिल सईदी—

नहीं अपने किसी मक़सदसे[1] ख़ाली कोई भी सज्दा[2]।
ख़ुदाके नामसे करता है इन्सां बन्दगी अपनी॥

आरज़ू लखनवी—ज़ाते ख़ुदामें यूँ हो महव।
नामे-ख़ुदाको भूल जा॥

यगाना चगेज़ी—बन्दे न होंगे जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सज्दा करे कोई॥

धन-कुबेरोसे

मुख़्तार अदीबी—

तुम्हें मुबारक हो क़सरो-ईवां,[3] यह ऐशो-मस्तीके साज़ो-सामां।
है झोपड़ोंसे मुझे मुहब्बत, मैं ग़मके मारोंका साथ दूंगा॥

साकिब लखनवी—

मकां मुनअ़मका[4] सोनेसे, यह ख़ूने-दिलसे बनता है।
ख़सो-ख़ाशाकका[5] घर भी बड़ी मुश्किलसे बनता है॥

आरज़ू लखनवी—

मुझे रहनेको वोह मिला है घर कि जो आफ़तोंकी है रहगुज़र[6]।
तुम्हें ख़ाकसारोंकी[7] क्या ख़बर, कभी नीचे उतरे हो बामसे[8]?

---

[1]मतलबसे, [2]नमाज़-उपासना; [3]महल, [4]धनिकका महल; [5]घास-फूसका; [6]मार्ग, [7]दीन-दुखियोंको; [8]ऊपरसे।

निर्धनता

रियाज़ ख़ैराबादी—मुफ़लिसोंकी ज़िन्दगीका ज़िक्र क्या ?
मुफ़लिसोंकी मौत भी अच्छी नहीं ॥

यगाना चंगेज़ी— ख़्वाह पियाला हो, या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न माँग ॥

पराई आग

दत्तात्रिय कैफ़ी—ग़म रहा उनका जो दोज़ख़में पड़े जलते हैं।
मेरे ख़ुश होनेका जन्नतमें भी सामाँ न हुआ ॥

रियाज़ ख़ैराबादी—मेरे सिवा नज़र आये न कोई दोज़ख़में।
किसीका जुर्म हो, मालिक मुझे सज़ा देना ॥

मनुष्यकी मजबूरियाँ

राज़ यज़दानी—अजब करम है, कि बे-अख़्तियारियाँ देकर।
अ़ता किया है दो आलमपै अख़्तियार मुझे ॥

शेरी भोपाली—न जीनेपर ही क़ाबू है, न मरनेका ही इमकाँ है।
हक़ीक़तमें इन्हीं मजबूरियोंका नाम इन्साँ है ॥

अपनी भाषा

यगाना— समझमें कुछ नहीं आता,
पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल ?
नमाज़ोंका है कुछ मतलब तो
परदेशी ज़बाँ क्यों हो ?

ये नसीहतकार

अयूब—जो हुस्नो-इश्ककी रूदादसे[1] हैं बेगाने[2]।
वोह क्या समझके चले आये मुझको समझाने॥

नागरिकता

तलव्वुर किरतपुरी—

कुछ मेरे बाद और भी आयेंगे काफिले[3]।
कांटे यह रास्तेसे हटा लूं तो चैन लूं॥

साम्यवाद

आनन्दनारायण मुल्ला—

महर[4] वोह है खाकके जर्रे जो करदे जरनिगार[5]।
ऊँची-ऊँची चोटियोंपर, नूर[6] बरसानेमे क्या॥

न जाने कितनी शमएँ गुल हुईं, कितने बुझे तारे।
तब इक खुरशीद[7] इतराता हुआ बाला-ए-बाम[8] आया॥

भक्त-वत्सलता

असर— उसकी रहमतको[9] नाज़[10] हो जिसपर।
तुझने ऐसी 'असर' खता न हुई॥

आरजू— करमपै[11] तेरे नजर की तो ढंगया सब गरूर।
बड़ा था नाज़ कि हद्का गुनहगार हूँ मैं॥

---

[1]बहानोंसे; [2]अनभिज्ञ; [3]यात्रीदल; [4]सूर्य; [5]प्रकाशमान; [6]प्रकाश; [7]सूर्य, [8]कमरेके ऊपर; [9]दयालुताको; [10]अभिमान; [11]कृपापर।

मज़हबसे बेज़ारी

यगाना— दुनियाके साथ दीनकी बेगार अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ, जानवर हुआ॥

बस एक नुक़्त-ए-फ़र्ज़ीका नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहक़ीक़का पता न चला॥

मज़हबसे दग़ा न कर, दग़ासे बाज़ आ।
किस कामका हज! मकरो-रियासे बाज़ आ॥
ईमान तो कहता है कि इन्साँ बन जा।
बन्देकी मददको आ, ख़ुदासे बाज़ आ॥

फ़िरक़ा-परस्ती

यगाना— पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोज़में इन्साँ हो जाय॥

सब तेरे सिवा काफ़िर, आख़िर इसका मतलब क्या?
सिर फिरा दे इन्साँका ऐसा ख़ब्ते-मज़हब क्या?

महराबोंमें सज्दा वाजिब, हुस्नके आगे सज्दा हराम।
ऐसे गुनहगारोंपै ख़ुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥

आनन्दनारायण मुल्ला—
मैं फ़क़त इन्सान हूँ, हिन्दू-मुसलमाँ कुछ नहीं।
मेरे दिलके दर्दमें तफ़रीक़े-ईमाँ कुछ नहीं॥

असर लखनवी—मसजिदेवाज़से इक रिन्द यह कहते उट्ठा—
"काफ़िर अच्छे हैं दिलाज़ार मुसलमानोंसे"॥

निशात सईदी—है दिल बवाये फ़िरक़ा परस्तीका है शिकार।
इन्सानियतकी मौत नुमायाँ अभीसे है॥

सर्व-धर्म-समभाव

अज़ीज़ लखनवी—

मंज़रे-जल्वात[1] है, ख़िलवत सरा-ए-दैर[2] भी।
काबेवालो फ़र्ज़ है तुमपर वहाँकी सैर भी॥

यगाना— खड़े हैं दुराहेपै दैरो-हरमके[3]।
तेरी जुस्तजूमें सफ़र करनेवाले॥

अज़ीज़ लखनवी—

ज़हनमें आया न फ़र्क़े-इम्तयाज़ों[4] आजतक।
मुद्दतों देखा है हमने काबा-ओ-दैर भी॥

अहिंसा

आनन्दनारायण मुल्ला—

तशद्दुदको[5] तशद्दुदसे दबालें यह तो मुमकिन है।
मगर शोलेको[6] शोलेसे बुझाया जा नहीं सकता॥

दिखा सकेगी न हरगिज़ जहाँको अम्नकी[7] राह।
सितमगरीकी वोह मशअ़ल[8] जो दूदसे[9] हो सियाह॥

इन्साँकी जहालतका सनी है वही मेयार[10]।
है सबसे सिवा पुख़्ता दलील आज भी तलवार॥

---

[1]मन्दिरकी एकान्त शान्ति देखने योग्य है, [3]मन्दिर-मस्जिदके; [4]भेद, अन्तर; [5]हिंसाको; [6]आगको, [7]शान्तिकी, [8]मशाल; [9]धुएँसे, [10]आदर्श, रिवाज।

प्रसगके अनुसार जो अशआर ज़हनमे आये, वे इस परिच्छेदमे दिये गये है। ऐसे हजारों शेर शेरो-सुख़नके समस्त भागोमे यत्र-तत्र मिलेंगे। यह तो एक झलक मात्र है। बकौल दिल शाहजहाँपुरी—

मेरा हाल था जहाँतक, वोह अदा हुआ ज़बाँसे।
जो कहेंगे अश्के-रंगी, वोह अलग है दास्ताँसे॥

१६ अप्रैल १९५४ ई०]
[संशोधित्त संस्करण सितम्बर १९५७ ई०]

मुशाअ़रा

१. मुशाअ़रोंका प्रारम्भिक रूप
२. मुशाअ़रोका विकसित रूप
३. मुराख़्ते
४. मुनाज़मे
५. तहरीरी मुशाअ़रे
६. मौजूदा मुशाअरे

मुशाअ़रोंका प्रचलन कब और कैसे हुआ और इनकी दाग़बेल डालने-वाला कौन था, यह बता सकनेमें इतिहासके पृष्ठ असमर्थ हैं, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सुख़नगोईका रिवाज अरबमें इस्लाम धर्मके पूर्व भी था। मुशाअ़रोंका विकसित, व्यवस्थित और निखरा हुआ रूप जो आज है, भले ही वह तब न हो, परन्तु एक अस्पष्ट-सा मानचित्र अवश्य था, जिसपर वर्त्तमान मुशाअ़रोंका निर्माण हो सका।

मुशाअ़रोंका प्रारम्भिक रूप

इस्लामधर्मके पूर्व अरबके कबाइली, अशिक्षित, एवं जनसाधारण, हाटों, मेलों, त्योहारों, उत्सवों आदिपर जब एकत्र होते तो उनमें शाइरीका शौक़ रखनेवाले परस्पर शेर कहते-सुनते थे। कभी यह शेरगोई सीमित व्यक्तियोंमें होती थी, कभी जनसमूहमें होती थी। परस्पर प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। एक-दूसरेपर शाइरीमें चोट करते थे। एक प्रकारसे यह ग्रामीण तुकबन्दी वाद-विवादका रूप ले लेती थी।

बहुत दिन नहीं गुज़रे इसीतरहकी अखाड़ेबाजी हिन्दी-कविताकी मैंने अपने बचपनमें (१६१०-१६२०) में मथुरा ज़िलेके क़सबों-गाँवोंमें देखी है। वहाँ झूलना, लावनी, सवैया, आदि कहनेवालोंके बाकायदे दल होते थे, जो कि उन दलके उस्तादोंके नामपर अखाड़े कहलाते थे। बा-क़ायदा उस्तादी-शागिर्दी चलती थी। यह अखाड़ेबाजी कोई आजीविकाका साधन नहीं थी, अपितु शौकिया थी। क़सबेमें बारात आई नहीं कि छेड़-छाड़ करनेको बड़े-बूढ़े, युवा-बालक, सभीके जी मचलने लगे। उन दिनों मज़ाक करनेका एक आम रिवाज था। बड़े-से-बड़े बारातीको अदना-से-अदना व्यक्ति छेड़ सकता था, परन्तु क्या मजाल कि कोई बुरा मान जाय। यही छेड़-छाड़ कभी-कभी कवित्तगोईका रूप ले लेती थी।

जहाँ किसी एकने परिहासमे कवित्त कह दिया कि सामनेके पक्षको उसका जवाव कवित्तमे देना लाज़िमी हो जाता था, और कवित्तमे एक-दूसरेपर फ़ब्तियाँ कसता था। एक-दूसरेकी वोलती वन्द करनेके लिए कवित्तमे अटपटे, पेचीदा प्रश्नोत्तरोकी झड़ी लगा देते थे। गरज हर गिरोह नहले-पर दहला मारनेकी ताकमे रहता था, और इस तरहकी मुकाविलेवाज़ी करनेके लिए अवकाशके समय खूब अभ्यास किया जाता था।

लावनी कहनेवालोके उत्तर प्रदेश तथा देहलीकी तरफ कलगीवाले और तुर्रेवाले दो दल वहुत प्रसिद्ध है। इनमें परस्पर खूब प्रतिद्वद्विता चलती है। कभी-कभी वड़े मार्केके मोर्चे जमते है। इनमे वहुत-से पेशे-वर भी होते है। जो वाज़ारो, मेलो, तमाशोमें चगपर गाते हुए फिरते है और सुननेवालोसे पैसा एकत्र करते है।

अरव या भारतके इन मजमोको मुशाअरा या कवि-सम्मेलन भले ही न कहा जाय, परन्तु नीवकी ईंट तो कहना ही पड़ेगा, क्योकि इन्हीपर इनका निर्माण हुआ है। जव लिखने-पढ़नेके सावन नही थे, तव यही मजमे साहित्यिक अभिरुचिको तृप्त करते थे।

तरही मुशाअरोका प्रचलन सम्भवत. सवसे पहिले ईरानमें ईसाकी दसवी शताव्दीमें हुआ।

अरवके उन मजमोमे देहाती जीवनकी झलक होती थी, जन-सावारणके मनोभावोका प्रतिविम्व होता था, और ईरानके इन मुशाअरोमे दरवारी शानो-शौकत होती थी। दरवारसे सम्वन्वित शाइर वादशाहोके कृपा-पात्र वननेके लिए और अधिक-से-अधिक अर्थ झटकनेके लिए वादशाहोकी खुशामदमे प्रशंसात्मक अतिशयोक्तियोसे भरे कसीदे कहते थे। अपने-अपने कसीदे कहकर ही सन्तोष नही करते थे, अपितु एक-दूसरेके क़सीदेको निम्नस्तरका सावित करनेकी धुनमे उन क़सीदोपर फ़िलवदी कसीदे भी कहते थे। इसीतरह ग़ज़लोपर गजले कहते थे। इसतरहके मुशाअरे दरवारोतक ही सीमित थे। जन-सावारणका इनमे कोई सरोकार नही था।

भारतमें फ़ारसी मुशाअ़रोंका प्रचलन सोलहवीं शताब्दीमें हुआ। मुग़लिया सल्तनतके पाँव जमनेपर यहाँ ईरानी शाइर बहुत बड़ी संख्यामें आने लगे, और उन्हें दिल्ली, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि सल्तनतोंमें सम्मानपूर्वक आश्रय मिलने लगा। तत्कालीन शासकोंका आतिथ्य-सत्कार, उदारता, दान-शीलता और साहित्यिक अभिरुचि ही उनके यहाँ आते रहनेके मुख्य आकर्षण थे। ईरानी शाइरोंके आनेपर यहाँ भी फ़ारसीके दरबारी मुशाअ़रे होने लगे।

मुशाअ़रोंका विकसित रूप

मुहम्मद शाही दौर (१८वीं शताब्दी) में जब कि मुग़लिया सल्तनत पतनोन्मुखी थी, मुशाअ़रे अपने चरम विकासपर थे। इस युगमें रेख़्ता (उर्दूका पूर्व नाम) काफ़ी उन्नति कर चुकी थी, और मीर, दर्द, सौदा, सोज़—जैसे उच्च-कोटिके शाइर आस्माने-शाइरीपर चमक रहे थे। फ़ारसी अब केवल रस्मी रह गई थी। जन-साधारणकी भाषा रेख़्ता हो गई थी। अतः फ़ारसी मुशाअ़रोंके अलावा अब रेख़्तेके मुशाअ़रे भी होने लगे, जो कि फ़ारसी मुशाअ़रोंसे पृथक्ता एवं भिन्नता दिखानेकी ग़रज़से मुराख़्ते कहलाते थे। इन मुराख़्तोंकी शानो-शौकत और सजावटका क्या कहना? महीनों पहलेसे तैयारियाँ होती थीं। ऐसे ही एक मुराख़्तेकी रूपसी तसवीर मिर्ज़ा फ़रहत उल्लाबेगने इस प्रकार खींची है—

मुराख़्ते

"चूनेमें अबरक मिलाकर मकानमें कलई की गई थी। जिसकी वजहसे दरो-दीवार बड़े जगमग-जगमग कर रहे थे। तख़्तोंपर चाँदनीका फ़र्श, उसपर क़ालीनोंका हाशिया, पीछे गावतकियोंकी क़तार, झाड़ों, फ़ानूसों, हाँडियों, दीवारगीरियों, क़ुमक़ुमों, चीनी-क़न्दीलों और गिलासोंकी वोह बहुतायत थी कि तमाम मकान बुक़अ़ए नूर बन गया था। जो चीज़ थी ख़ूबसूरत और जो शै थी क़रीनेसे। सामनेकी सफ़के दीवारों-बीच छोटा-सा

सब्ज़ मख़मलका कारचोबी शामियाना, गंगा-जमुनी चोबोंपर सब्ज़ई रेशमी तनावोंसे अस्ताहद[1] था। उसके नीचे सब्ज़ मख़मलकी कारचोबी मसनद, पीछे सब्ज़ कारचोबी गावतकिया, चारों चोबोंपर छोटे-छोटे आठ चान्दीके फ़ानूस कसे हुए, फ़ानूसोंके कँवल भी सब्ज़[2]। चोबोंके सुनेहरी कलसोंसे लगाकर नीचेतक मोटे-मोटे मोतियाके गजरे सेहरेकी तरह लटके हुए, बीचकी लड़ियोंको समेटकर कलाबत्तूनी डोरियोंसे (जिनके सिरोंपर मुक़्क़ैशके[3] गुच्छे थे) इस तरह चोबोंपर कस दिया गया था कि शामियानेके चारों तरफ फूलोंके दरवाज़े बन गये थे। दीवारोंपर जहाँ खूँटियाँ थी, वहाँ खूँटियोंपर और जहाँ खूँटियाँ नही थी, वहाँ कीलें गाड़कर फूलोंके हार लटकाये थे। इस सिरेसे उस सिरेतक सफेद छतगिरी, जिसके हाशिये सब्ज़ थे, खींची हुई थी। छतगीरीके बीचोबीचमें मोतियोंके हार लटकाकर लड़ियोंको चारो तरफ़ इस तरह खींच दिया था कि फूलोंकी छतरी बन गई थी। एक सहनचीमें पानीका इन्तज़ाम था। कोरे-कोरे घड़े रखे थे और शोरेमें जस्तकी सुराहियाँ लगी हुई थी। दूसरी सहनचीमें पान बन रहे थे। बावर्चीख़ानेमें[4] हुक़्क़ोंका तमाम सामान सलीक़ेसे जमा हुआ था। जा-बजा नौकर साफ सुथरा लिबास पहिने दस्तबस्ता मुअद्दब[5] खड़े थे। तमाम मकान मुश्को-अम्बर[6] और अगरकी[7] ख़ुशबूसे पड़ा महक रहा था। क़ालीनोंके सामने थोडे-थोड़े फ़ासलेपर हुक़्क़ोंकी कतार थी। हुक़्क़े ऐसे साफ़ सुथरे थे कि मालूम होता था अभी दुकानपरसे उठ आये है। हुक्कोंके बीचमें जो जगह छूट गई थी, वहाँ छोटी तिपाइयाँ रखकर उनपर ख़ासदान[8] रख दिये थे। ख़ासदानोंमें लालकन्दकी[9] साफियोंमें लिपटे हुए पान। गिलोरियोंको साफीमें इसतरह जमाया था कि बीचमें एक-एक तह फूलोंकी आ गई थी। ख़ासदानोंके बराबर छोटी-छोटी

---

[1]सुसज्जित; [2]क्योंकि शाही निशान सब्ज़ था; [3]चान्दी या सोनेके तारोंके; [4]रसोई घरमें; [5]नम्रता-पूर्वक; [6]कस्तूरी; [7]चन्दनकी बत्तीकी; [8]पानदान; [9]लाल कपडेकी।

किश्तियाँ, उनमें इलायचियाँ, चिकनी डलियाँ। मसनदके सामने चान्दीके दो शमादान, अन्दर काफूरी वत्तियाँ, ऊपर हलके सब्ज़रगके छोटे कँवल, शमादानके नीचे चान्दीके छोटे लगन (थाली), लगनोमे केवडा। गरज़ क्या कहूँ एक अजीव तमाशा था"।[1]

शुरू-शुरूमे यह मुराख़्ते भी दरवारतक ही सीमित रहे; परन्तु शनैः शनैः सार्वजनिक रूप लेते गये। फारसीके मुशाअरे माँद पड़ते गये और मुराख़्ते अव मुशाअरे कहे जाने लगे।

दिल्ली उजड़नेके वाद वहाँके शाइर लखनऊ, रामपुर, हैदरावाद, अज़ीमावाद (पटना), टाँडा, टोक आदि जिन रियासतोंमें पहुँचे, मुशाइरोकी दाग़वेल डाल दी और इस तरह उर्दू-मुशाइरे सर्वत्र होने लगे।

यह मुशाअ़रे साहित्यिक जीवनका एक अग वन गये। इनको व्यवस्थिति और सुरुचिपूर्ण रूप देनेके लिए कायदे-कानून भी वनाये गये। उनका उल्लघन या पूर्णरूपेण पालन न करना असम्यता एवं वदतमीज़ी समझी जाती थी।

'मीर-मुशाअरे' का इन्तख़ाव (अध्यक्षका चुनाव), गज़ल कहनेका सलीका, दाद देनेका तरीका, दाद मिलनेपर शाइरके आभार प्रदर्शित करनेका शऊर, श्रोता और शाइरोंके वैठनेके स्थान, पहले और वादमें पढनेके नियम निश्चित किये गये।

दरवारी मुशाअ़रोमें मीर मुशाअरा स्वय शासक होता था। पहले वह स्वय गज़ल पढता था, वादमें अन्य शाइर। मीर मुशाअरेके सकेतपर चोवदार जिस शाइरके सामने शमअ़ रख देता था, वही शाइर गज़ल पढता था। जव मुशाअ़रे दरवारकी परिधिसे निकलकर आम हो गये, तव भी किसी शासकको ही मीर मुशाअरा वनानेका प्रयत्न किया जाता था। क्योंकि इससे ख्यातिप्राप्त शाइरो एव प्रतिष्ठित नागरिकोको सुगमता-

---

[1]आख़िरी शमअ़, पृ० ३१-३३।

पूर्वक मुशाअ़रेके लिए आकर्षित किया जा सकता था। जैसे कि वर्त्तमानमे प्रायः समारोहोका अध्यक्ष एव उद्घाटन-कर्त्ता किसी मिनिस्टरको ही वनाया जाता है, चाहे उसे उस समारोहके उद्देश्यसे दूरका भी वास्ता न हो, और सचमुच मिनिस्टरोंके कारण समारोह सफल भी होते है। इच्छित विद्वानो, प्रतिष्ठित व्यक्तियो, अफ़सरोका सहयोग तो मिलता ही है, अर्थ-संचय भी सुगमतासे हो जाता है। जव प्रजातन्त्रकालमें यह स्थिति है, तव वह तो सामन्ती युग था। प्रायः सभी अच्छे शाइर दरवारसे सम्वन्धित होते थे, प्रतिष्ठित नागरिकोका भी कुछ-न-कुछ दरवारसे वास्ता होता था और स्वयं शासक शाइर, अथवा शाइर नवाज़ होते थे। अतः उनको मीर-मुशाअरा वनानेका प्रयत्न स्वाभाविक था। श्रोताओ और शाइरोंके यथा स्थान वैठ जानेके वाद मीर-मुशाअरा तशरीफ लाते थे। एक देहलवी मुशाअ़रेके मीर मुशाअ़रा मिर्ज़ा फ़तहउलमुल्क उर्फ़ मिर्ज़ा फखरू युवराज थे। उनकी तशरीफ़ आवरीका चित्र मिर्ज़ा फ़रहत उल्लावेगने इस प्रकार खीचा है—

"हवादारसे उनका नीचे कदम रखना था कि सव सरोकद खड़े हो गये। चार चोवदार सब्ज़ खिड़कीदार पगड़ियाँ वान्वे, नीची-नीची सब्ज़ वानातकी अचकनें पहने, सुर्खशाली रूमाल कमरसे लपेटे, हाथोमें गंगा-जमुनी असा और मोरछल लिये हुए हवादारके पीछे थे। उधर मिर्ज़ा फखरूने फ़र्शपर कदम रखा। उधर असावरदार तो उनके सामने आगये और मोरछलवरदार पीछे हो लिये। इस सिलसिलेमें यह जुलूस आहिस्ता-आहिस्ता शामियानेतक आया। मिर्ज़ा फ़खरूने शामियानेके करीव खड़े होकर सवका सलाम लिया। फिर चारों तरफ नज़र डालकर कहा "इजाज़त है।" सवने कहा—"विस्मिल्लाह-विस्मिल्लाह" इजाज़त पाकर यह शामियानेमे गये और सवको सलाम करके वैठ गये। दूसरे सव लोग वैठनेकी इजाज़तके इन्तज़ारमे खड़े थे। उन सवकी तरफ नज़र डालकर कहा—"तशरीफ़ रखिए, तशरीफ रखिए।" सव लोग सलाम करके

अपनी-अपनी जगह बैठ गये।······मोरछलबरदार शामियानेके पीछे और असाबरदार सामनेकी सफकी पुश्तपर जा खड़े हुए।··· "मीर मुशाअ़रेका इशारा पाते ही दोनो चोबदारोंने बा-आवाज बुलन्द कहा—"हज़रात मुशाअ़रा शुरू होता है।""[1]

मुशाअ़रेके अध्यक्ष यदि स्वय बादशाह या नव्वाब होते तो पहले वह स्वय गजल पढते फिर क्रमश: शाइर पढते। यदि किसी सार्वजनिक मुशाअ़रेमें बादशाह शिरकत न फ़रमाते और प्रबन्धकोंके आग्रहपर गज़ल भेजना मंजूर कर लेते तो मुशाअ़रेके प्रारम्भमें किसी खुश गुलूसे बादशाहकी गज़ल पढवाई जाती, फिर मीर मुशाअ़रा अपनी गजल पढते, फिर बारी-बारीसे जिस शाइरके आगे शमअ़ रखी जाती, वह पढ़ता था। शाइरोंके पढनेका ढग और अन्दाज़े-बयान अपना-अपना होता था। मगर कुछ शाइर ऐसे भी होते थे, जो पढनेके साथ हाव-भाव भी व्यक्त करते थे। एक बानगी देखिए—

"शमअ़ सरक कर लाला बालमुकुन्द 'हुजूर' के सामने आई। यह जातके खत्री और ख्वाजा मीर 'दर्द' के शागिर्द हैं। कोई ७०-८० बरसका सिन है। सफेद नूरानी चेहरा, उसपर सफेद लिबास, बगलमें अँगोछा, कंधोपर सफेद काश्मीरी रूमाल। बस जी चाहता था कि उनको देखे ही जाइए। शमअ़ सामने आई तो उन्होंने उज्र किया कि—"मै अब सुनानेके काबिल नही रहा। सुननेके काबिल रह गया हूँ।" जब सभोने इसरार किया तो उन्होने यह किता पढा—

न पांवोमें जुम्बिश, न हाथोमें ताकत।
जो उठ खींचें दामन हम उस दिलरुबाका॥
सरे-राह बैठे हैं और यह सदा है।
कि अल्लाहवाली हैं वे दस्तो-पाका॥

---

[1] आख़िरी शमअ़, पृ० ४२-४३।

किता इस तरह पढ़ा कि ख़ुद तसवीर हो गये। 'न पाँवोंमे ताकत' कहते हुए उठे, मगर पाँवने यारी न की, लड़खड़ाकर बैठ गये। 'न हाथोंमे ताकत' कहकर हाथ उठाये, मगर ज़ोफसे वह भी कुछ यूं ही उठकर रह गये। दूसरा मिसरा ज़रा तेज़ पढा। तीसरा मिसरा पढते वक्त इसतरह बैठ गये, जैसे कोई वे-दस्तो-पा सरे-राह बैठकर सदा लगाता है और एक दफ़ा ही दोनो आँखोको आसमानकी तरफ उठाकर जो चौथा मिसरा पढ़ा तो यह मालूम होता था, गोया सारी मजलिसपर जादू कर दिया। हरेकके मुँहसे तारीफ़के वजाय वे-साख्ता यही निकल गया कि "अल्लाह वाली है वे दस्तो-पाका।"[1]

अच्छा शेर पढ़े जानेपर आम तौरपर श्रोताओमें-से 'वाह-वा, सुव्हान अल्लाह, मरहवा' आदिका शोर वुलन्द होता ही था। मगर शाइर भी अपने ढंगसे दाद देते थे। इस तरहके दाद देनेके ढगकी एक ख़याली तसवीर वावा-ए-उर्दू अल्लामा प० दत्तात्रिय 'कैफी'ने यूँ खीची है—

"शमअ़ इन्शाके सामने रखी जाती है। इन्शा गज़ल पढ़ते हैं—"

कमर वान्धे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे है।
वहुत आगे गये वाकी जो है तैयार बैठे है॥

सौदा—क्या मतला कहा है ?
मीर—लफ़्ज़ है कि तीरो-नश्तर।
दर्द—सैयद इन्शा ! इसकी दाद है छाती कूटना।
मुसहफी—वाह क्या हमागीर तवीयत पाई है। क्या दर्दभरा मतला कहा है।
नसीम—वे पनाह मतला हुआ है।
नासिख—वल्लाह दिल भरा आता है।
ज़ौक—दो मिसरे है कि दुधारा तेग़ा, दिलमें खुवा जाता है।
गालिव—लुत्फ यह कि हुस्ने-अदा कितनी नुदरत लिये हुए है।

---

[1]आख़िरी शमअ़, पृ० ७१।

इन्शा— न छेड ऐ निकहते-बादे-बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥

मीर—"शेर है कि दुगाड़ा। अब ऐसा शेर और न पढ़ना, वरना एक-आध जनाज़ा आज मुशाअ़रेसे उठेगा।"[1]

इन मुशाअ़रोंका प्रारम्भ भी दरबारोंसे हुआ था। अतः इनमें भी वे सब दोष आगये जो फ़ारसी मुशाअ़रोंमें थे। प्रतिद्वद्वीको नीचा दिखानेके लिए उस्ताद अपने शिष्योंके दलके साथ आते। ये शिष्य प्रतिद्वन्द्वीके पढ़नेपर फब्तियाँ कसते, नुक्ताचीनी करते, व्याकरणकी भूल निकालते, शेरमें कहे हुए भावोंके लिए प्रमाण माँगते और अपने पक्षके शाइरके गज़ल पढनेपर खूब-खूब दाद देते। कौन कहाँ बैठे और कौन पहिले या बादमें पढे, इसपर भी ऐतराज़ उठते। परिणामस्वरूप यह मुशाअ़रे साहित्यिक गोष्ठी न रहकर पहलवानी अखाड़े बन गये।

'सौदा' जिससे नाराज़ हो जाते, भरी महफ़िलमें उसकी हिजो कह डालते। 'आतिश'-ओ-'नासिख़', 'मुसहफ़ी'-ओ-'इन्शा', 'जुरअत-ओ-'करेला' भाण्डके वाद-विवादोंने जो घिनावना रूप ले लिया था, उसीसे खीझकर 'मुसहफ़ी' ने तत्कालीन मुशाअ़रोंके बारेमें कहा था—

वज़्मे-शुअ़रा है या यह मुर्ग़ियोंकी पाली है

इन झगडोंके कारण बहुत-से लोगोंकी तो मुशाअ़रे करानेकी हिम्मत ही न होती थी, और जो साहब अपने यहाँ नियमित[2] मुशाअ़रे कराते थे, उनमें-से भी अक्सर स्थगित करनेको बाध्य हो जाते थे। भले आदमी इन मुशाअ़रोंमें जानेसे घबराते थे। एक साहब हकीम 'मोमिन' को मुशाअ़रेका निमत्रण देने गये तो 'मोमिन' बोले—"बस साहब मुझे तो मुआफ़ ही कीजिए। अब देहलीके मुशाअ़रे शरीफोंके जानेके काबिल नहीं रहे। एक साहब हैं,

---

[1]तमसीली मुशाअ़रा, पृ० ४६-४७।
[2]कोई साप्ताहिक, कोई मासिक, कोई छमाही मुशाअ़रे कराते थे।

वह अपनी उम्मत (अनुयायियो, शिष्यो) को लेकर चढ आते है। शेर समझनेकी तो किसीको तमीज़ नही, मुफ्तमे वाह, वाह, सुब्हान अल्लाहका गुल मचाकर तबीयतको मुन्नगिज़ (अप्रसन्न) कर देते है। दूसरे साहब है, वोह हुदहुद (शिष्यका उपनाम) को साथ लिये फिरते है, और ख्वाम-ख्वाह उस्तादोपर हमले कराते है। खुद तो मैदानमे आते नही और अपने ना अहल (मूर्ख) पट्ठोंको मुकाबिलेमें लाते है। .....भई मैंने तो इसी वजहसे मुशाअरोमे जाना ही तर्क कर दिया है।"[1] बाज़-बाज़ शाइर तो अपने साथ बटेरे भी लाते थे। मिर्ज़ा फरहतउल्लाबेग एक मुशाअरेके बारेमे लिखते हुए फर्माते है—

"एक चीज जो मुझे अजीब मालूम हुई, वोह यह थी कि किलेवाले (शाहज़ादे वगैरह) जितने आये थे, सबके हाथोमे बटेरे दबी हुई थी। यह बटेरबाजी और मुर्गबाज़ीका मर्ज़ किलेमे बहुत है। रोज़ाना तीतरो, बटेरो और मुर्गोकी पालियाँ होती है। एक शाहज़ादे साहबने तो कमाल किया है। एक बड़े छकडेपर ठाठर लगाकर छोटा-सा घर बना लिया है और ऊपर छतपर मिट्टी डालकर कँगनी बो दी है। ठाठरमें खुदा झूठ न बुलाये तो लाखो ही पिदडियाँ है। जहाँ चाहा छकडा ले गये और पिद-डियाँ उडा दी। ऐसी सधी हुई है कि झल्लडसे एक भी फटकर नही जाती। उन्होने झण्डी हिलाई और वोह उडी, उन्होने आवाज़ दी और वह छतपर आकर बैठ गई।"[2]

मुशाअरा प्रारम्भ होनेपर यह बटेरे थैलियोमे बन्द कर दी जाती थी।

कुछ मुशाअरे बहुत व्यवस्थित और अनुशासनपूर्ण होते थे। बडे-से-बड़ा आदमी नियम भग करनेका साहस नही कर सकता था। देहलीके प्रसिद्ध सूफी शाइर ख्वाजा 'दर्द' के यहाँ पाक्षिक मुशाअरे हुआ करते थे।

---

[1]आख़िरी शमअ, पृ० २६।

[2]आख़िरी शमअ, पृ० ४२।

शाहआलम भी उसमे शरीक होनेकी अभिलाषा रखते थे। मगर आप टालते ही रहे। बडे आदमियोंके स्वागत-सत्कारमें जो कष्ट और जिल्लतें उठानी पड़ती है, शायद इसीका ख्याल करके ख्वाजा दर्दने अपनी आध्यात्मिक शान्तिमे विघ्न न डालनेकी ग़रज़से उन्हें न बुलाना चाहा होगा। फिर भी एक रोज़ सूचित किये बिना ही बादशाह मुशाअ़रेमें तशरीफ ले आये। तशरीफ जब ले ही आये तो जहाँ उचित स्थान मिला, बैठ गये। सयोगकी बात पाँवमें दर्द होनेके कारण बादशाहने पाँव फैला दिये। ख्वाजा साहबको यह अच्छा न लगा। बोले—"महफिलमें पाँव पसारकर बैठना तहज़ीबके खिलाफ़ है।" बादशाहने अपने दर्दकी कैफियत बताकर मआज़रत चाही तो ख्वाजा साहबने जवाब दिया कि अगर पाँवमें दर्द था तो यहाँ आनेकी आपने तकलीफ ही क्यो की।"[1]

इन मुशाअ़रोंसे उर्दूका खूब प्रसार हुआ। वह कोने-कोनेमें पहुँच गई। ज़बान निखरती गई, मुहावरे खरादपर चढ़कर चमकते गये। भावो और उदाहरणोंसे उर्दूका कोश भरता गया।

लाभके साथ हानि भी हुई। उस हानिके निम्न कारण थे—

१—कोई भी शाइर उर्दूका पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त किये बगैर और उस्तादको दिखाये बगैर मुशाअरेमें गज़ल नही पढ सकता था। इससे उर्दूका क्षेत्र सीमित होने लगा।

२—विरोधियोंकी कटु आलोचनाओंके भयसे अक्सर शाइर नवीन भावो-उदाहरणोको शेरमें समोते हुए झिझकते थे और वही पुराने सुने-सुनाये विचारोकी पुनरावृत्ति करते रहते थे।

३—शब्दोंके बाह्य सौन्दर्य और उसके जाहिरा रख-रखावपर दाद अधिक मिलती थी।

४—शाइराना करतब दिखानेके लिए बडे ऊट-पटाँग, अजीबो-

---

[1] आबे-हयातके लतीफे, पृ० २२।

ग़रीव वेमायने मिसरे-तरह दिये जाते थे। जिनपर कई-कई गज़लें लिखी जाती थी। भला वताइए इस तरहकी मश्के-सुख़नसे उर्दू-शाइरीका क्या महत्त्व वढ सकता था—

वुलवुल चमनसे रूठके वैठी हैं ठुंठ पर

—————

न उड़ा सकता है मुँहकी न वग़लकी मक्खी

—————

अयाँ हो नैरंगिये-दिगरसे फ़लकपै विजली, ज़मीपै वाराँ

—————

हुआ रंगी चमन सारा अहा-हा-हा, अहा, हा-हा

—————

ज़मी ठंडी, हवा ठंडी, मकाँ ठंडा, चमन ठंडा

१८५७ ई० के विप्लवके वाद गजलके साथ-साथ मुशाअ़रोकी भी मुखालफत प्रारम्भ हुई। एक ही मिसरे तरहपर सैंकड़ो शाइरोकी प्राय: एक-से भावो-विचारोकी गजलें सुनते-सुनते लोग ऊव-से गये थे। अत: लाहोरमें १५ अगस्त १८६७ ई० को 'अंजुमने-उर्दू'की स्थापना की गई। जिसमें नज्मों, भाषणो, और निवधोंके पढनेका रिवाज डाला गया। नज्मोकी महफिलोको मुनाज़मा कहा जाता था। इन मुनाज़मोके लिए पहिले-मे शीर्षक निश्चित कर दिये जाते थे, जिनपर शाइर नज्म लिखकर लाते और मुनाज़मोमे पढते थे। इसप्रकार शाइरीको जीवनके समीप-से-समीप लानेका प्रयत्न किया जाता था। लेकिन यह क्रम अधिक दिन नही चल सका और यहाँ भी नज्म शीर्षकके साथ गज़लोंके लिए मिसरा तरह दिया जाने लगा और यह भी आम मुशाअ़रे-जैसी चीज़ वनकर रह गई।

मुनाज़मे

मुद्रणका प्रसार होनेपर मुशाअ़रे तहरीरी भी होने लगे। पत्र-सम्पादक कोई मिसरा तरह देकर उसपर गज़ल भेजनेको अच्छे-अच्छे शाइरोको आमन्त्रण करता था और गज़ले आनेपर पत्रमे प्रकाशित करता था। इन लिखित मुशाअ़रोंसे उर्दूको बहुत लाभ पहुँचा। न तो इन लिखित मुशाअ़रोमें महफिली मुशाअ़रोंकी व्यवस्थाकी परेशानी रही और न पारस्परिक कलहका भय। एक ही जगह भिन्न-भिन्न शाइरोका कलाम सुलभ होनेसे जनताकी रुचि परिष्कृत हुई। अच्छे-बुरे समझनेका शऊर आया। जो अच्छे शाइर अच्छा न पढ सकनेके कारण बाज़ घटिया शाइरोंके आगे उनकी गलेबाज़ीकी वजहसे माँद पड जाते थे, अब पूरे आबो-तावके साथ चमके। जनतामें शाइरीकी तरफ सही, वास्तविक रुचि उत्पन्न हुई। इस प्रकारके मुशाअ़रे बाज़ उर्दू-पत्र अब भी कराते रहते है। 'शाइर'का १९५०का मुशाअ़रा नम्बर हमारे सामने हैं।

तहरीरी मुशाअ़रे

इन्हीं अँधेरोंसे बज़्मे-गेतीको एक दिन रोशनी मिलेगी

मिसरा तरहपर ४ शाइरोंकी नज़्में और १०६ शाइरोकी गज़लें १५२ पृष्ठोमें मुद्रित है। यहाँ हम बतौर नमूना कुछ ख्यातिप्राप्त शाइरोकी नज़्में और गज़लोंके अपनी पसन्दके चन्द अशआ़र हर रगके बहुत-बहुत शुक्रियेके साथ 'शाइर' से उद्धृत कर रहे है।[1]

मुशाअ़रोंके इन चुने हुए अशआ़रसे पाठकोको विदित हो सकेगा कि एक ही मिसरा तरहपर शाइर अपने भाव किस तरह व्यक्त करते है। साथ ही पुरानी शाइरी और आजकी शाइरीमें कितना महान् अन्तर आ गया है, यह भी जान सकेंगे। पुरानी और नई शाइरीपर तुलनात्मक अध्ययन हम विस्तारसे सिंहावलोकनमे दे रहे हैं।

---

[1]अल्लामा सीमाब अकबरावादी-द्वारा स्थापित और हज़रत एजाज़ सद्दीकी-द्वारा सम्पादित। पहले आगरेसे प्रकाशित होता था, अब बम्बईसे प्रकाशित होता है।

नज़्मोंके चन्द अशआर

ऐ असरे-नौके शाइर !

ख़बर भी है असरे-नौके शाइर[1] कि ज़ीस्त[2] है एक जुर्मे-संगी[3]।
यह जुर्मकी शमअ[4] जब बुझेगी तो दौलते-रोशनी[5] मिलेगी ॥
रुवाब[6] जब बे-सदा[7] बनेगा तो राग गूंजेंगे ज़ेरे-गर्दूं[8]।
कलीम[9] जब ज़ेरे-ख़ाक होगा, कलामको बरतरी[10] मिलेगी ॥
किसीको इसमें नहीं है घाटा, अदबका[11] है 'जोश' नक़्द सौदा।
गड़ा तो पैग़म्बरी मिलेगी, सड़ा तो फिर दावरी[12] मिलेगी ॥

—जोश मलीहाबादी

एक महाजरीन[13] दोस्तसे

तेरी गरीबीका क्या मदावा[14] कि तू है अहसासका[15] सताया।
रहा अगर तेरा ज़हन[16] मुफ़लिस तो हर जगह मुफ़लिसी मिलेगी ॥
ख़ला-ए-ज़हनीको[17] अपने पुर कर[18], नहीं तो जीना भी होगा दूभर।
यह जेबे-फ़ितरत[19] रही जो ख़ाली तो सारी दुनिया तही[20] मिलेगी ॥
वतनको तू छोड़ दे मगर, क्या, ग़मे-वतन तुझको छोड़ देगा ?
वोह साज़की[21] हो, कि मतरुबाकी[22] हरइक सदा दुखभरी मिलेगी ॥
वहाँ जो अहलेवतन मिलेंगे तो वोह भी तसवीरे-ग़म मिलेंगे।
अदा-अदा ग़मज़दा मिलेगी, नज़र-नज़र शबनमी[23] मिलेगी ॥

---

[1]नवयुगके कवि; [2]ज़िन्दगी, [3]महान् अपराध; [4]दीपक; [5]प्रकाश-धन; [6]सरोद, [7]बेआवाज; [8]आकाशके नीचे, [9]शाइर, लेखक; [10]श्रेष्ठता; [11]साहित्यका; [12]जन्नतकी न्यायाधीशी, [13]देश छोडनेवाले (पुरुषार्थी); [14]उपाय इलाज; [15]घटिया मनोवृत्तिका; [16]मनोभाव; [17]मानसिक गड्ढेको; [18]भर; [19]मनकी जेब, [20]ख़ाली; [21]वाद्यकी; [22]संगीतज्ञकी; [23]भीगी हुई।

यहाँका जब तज़करा छिड़ेगा, तो उन फ़िज़ाओंमें[1] दम घुटेगा।
बुझी-बुझी होगी शमअ़ दिलकी, धुआँ-धुआँ ज़िन्दगी मिलेगी॥
न कर मुझे मौतके हवाले, वतनसे ऐ दूर जानेवाले!
यहाँ तड़पती है आज लाशें, यहीं पै कल ज़िन्दगी मिलेगी॥
यह ज़र्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने बिस्तर।
चमन सलामत, बहार इक दिन तवाफ़[2] करती हुई मिलेगी॥
नया ज़माना, नया सवेरा, नई-नई रोशनी मिलेगी।
यह रात जब ले चुकेगी हिचकी हयात[3] इक दूसरी मिलेगी॥

—नज़ीर बनारसी

मंज़िलतक

अभी तो गेतीकी[4] ज़ुल्फ़े-पेचाँको और भी बरहमी[5] मिलेगी।
अभी तो इन्सानियतको हमदम! कुछ और शरमिन्दगी मिलेगी॥
अभी तो दामनपै आदमीयतके और धब्बे हैं पड़नेवाले।
अभी हयाते-बशरके[6] होंटोको और भी तिशनगी[7] मिलेगी॥
ख़लूस[8] सोयेगा और कुछ दिन अभी तो मुँह ढाँपकर कफ़नसे।
अभी तो महरो-वफ़ाके[9] जज़्बेको[10] हर घड़ी मौत ही मिलेगी॥
अभी तो चेहरोंपै और उभरेंगी ग़मकी पुरहौल झाइयाँ-सी।
अभी जबीनोंपै[11] अहले-गुलशनके और भी बेबसी मिलेगी॥
कुछ और ख़ूने-जिगरसे गुलकारियाँ-सी होंगी हर आस्तींपर।
अभी कुछ और आँख हर बशरकी इसी तरह शबनमी[12] मिलेगी॥

---

[1]वातावरणमे, [2]प्रदक्षिणा, [3]ज़िन्दगी, [4]संसाररूपी प्रेयसीको, [5]परेशानी; [6]मनुष्यजीवनके; [7]पिपासा; [8]स्नेह, मित्रता, [9]नेकी-भलाईकी; [10]भावनाओंको; [11]मस्तकोपै; [12]भीगी हुई।

इन्हीं मसाइबकी[1] गोदमें पल रही हैं 'नाज़िश' मसर्रतें[2] भी।
इसी जहन्नुमकदेसे[3] इक रोज़ राह फ़िरदौसकी[4] मिलेगी॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

ग़ज़लोंके चन्द अशआर

फ़सुर्दगीकी[5] तहोंमें बाक़ी हरारते-ज़िन्दगी मिलेगी।
निगाहने दूरतक कुरेदा तो आग दिलमें दबी मिलेगी॥
हयाते-ताज़ापै[6] मरनेवाले! हयाते-ताज़ा है मौत ही से।
यह ज़िन्दगी पहले ख़त्म करले, तो फिर नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
न भूल ऐ तारके-मुहब्बत[7]! कि तर्के-उल्फ़त भी इक ख़लिश[8] है।
जो फाँस तूने निकाल दी है, वोह फाँस दिलमें लगी मिलेगी॥
ज़रा-सी ख़ातिर शिकस्तगीकी[9] नहीं है बरदाश्त आदमीको।
कलीको वक़्ते-शिकस्त देखो तो मुसकराती हुई मिलेगी॥

—सीमाब अकबराबादी

वोह आप आयेंगे वक़्ते-आख़िर इजाज़ते-दीद[10] भी मिलेगी।
किसे ख़बर थी कि मौत ही में हलावते-ज़िन्दगी[11] मिलेगी॥
तलाशकी हद तो ख़त्म कर दे, हसूले-मकसदकी फ़िक्र क्या है?
जहाँ क़दम लड़खड़ाये थककर वहीं यह दौलत पड़ी मिलेगी॥
कमरको कसले तो मुन्तज़िर बन,[12] कि जिसदम होगी तलब[13] अचानक।
न वक़्फ़ा[14] इक साँसका रहेगा, न फ़ुरसत इक बातकी मिलेगी॥

---

[1]मुसीबतोंकी; [2]ख़ुशियाँ; [3]नरकसे; [4]स्वर्गमार्गकी; [5]मुर्झाहटकी; [6]नवजीवनपै; [7]प्रेम-त्यागी; [8]चुभन; [9]पराजयताकी; [10]दर्शनोंकी आज्ञा; [11]जीवन-मिठास; [12]प्रतीक्षा करनेवाला; [13]बुलाहट; [14]अन्तर।

सम्भलके रह, है जो रिन्दे-मशरब,[1] हवास खोये तो खो दिया सब।
न होगा लुत्फ़े-ख़ुदी[2] ही हासिल, न लज़्ज़ते-बेख़ुदी[3] मिलेगी॥
कठिन मुहब्बतकी मंज़िलें हैं और आगे बढ़ना है बे सहारे।
जब 'आरज़ू' आप मिट चुकेंगे तो आरज़ू-ए-दिली[4] मिलेगी॥

—आरज़ू लखनवी

अज़ीज़[5] जब होगा बाग़बांको चमनका हर गुल हर आशियाना।
उरूस[6] जैसे हो एक शबकी[7] बहार ऐसी सजी मिलेगी॥
ज़मीरे-शबसे[8] तुलूअ़[9] होगा इक आफ़ताबे-निज़ामे-ताज़ा[10]।
नई नवेली सहरकी[11] किरनोंसे खेलती ज़िन्दगी मिलेगी॥
बजाए हुब्बेवतन है बाहम चलन बग़ावत कि दुश्मनीका।
यही जो पायाने-हुर्रियत[12] है, तो खाक आसूदगी[13] मिलेगी॥
बुने हैं नफरतने जाल क्या-क्या, फ़रेबो-मकरो-दग़ा-ओ-शरके।
यह जिनके गुन हैं, यह उनके दावे कि जल्द ही शान्ति मिलेगी॥
जो नेकियां हैं शिकस्तख़ुरदा[14] तो सरनगूं रास्तीका परचम[15]।
यही जो नक़्शा है, आदमीयत कफनमें लिपटी हुई मिलेगी॥
यही जो है द्वन्द स्वाहिशोंका यही जो है गन्दगीकी पूजा।
मुहज़्ज़ब[16] इन्सांकी वहशियोंसे कड़ी-कड़ीसे जुड़ी मिलेगी॥

—असर लखनवी

निशाने-सोज़े-दरूँ[17] हमारा, मिटा नहीं है न मिट सकेगा।
अगर्चे दिल जलके रह गया है, कुछ आग फिर भी दबी मिलेगी॥

—वहशत कलकत्तवी

---

[1]सच्चा मद्यप; [2]अहम-आनन्द; [3]आत्मलीनताका सुख; [4]हृदयाभिलाषा; [5]प्रिय; [6]दुल्हन; [7]रातकी; [8]अन्त करण रूपी रात्रिसे; [9]उदय; [10]नव-व्यवस्या-सूर्य; [11]प्रातःकालकी; [12]स्वतन्त्रताकी सीमा; [13]सुख-शान्ति; [14]पराजित; [15]भलाईकी ध्वजा झुकी हुई; [16]भद्र पुरुषोंकी; [17]अन्तरग आग।

नक़ाब रुख़से उठायेंगे वोह, ज़रूर महशरमें आयेंगे वोह।
मगर इसे पहले सोच लूँ मैं, इजाज़ते-दीद[1] भी मिलेगी॥

—नूह नारवी

अगर मैं नाकामे-दीद मर जाऊँ अपने कूचेमें ढूँढ़ लेना।
वहीं कहीं ख़ाको-ख़ूँमें ग़लताँ[2] मेरी तमन्ना पड़ी मिलेगी॥
ब-होश-ह्-वास ऐ मुसाफ़िरे-राहे-ज़िन्दगी! यह वोह रास्ता है।
जहाँ तुझे रहबरीकी[3] सूरतमें जा-बजा रहज़नी[4] मिलेगी॥

—मानी जायसी

ख़ुदाकी रहमतको पारसा अब, अज़ाबे-दोज़ख़ समझ रहे हैं।
उन्हें गुमाँतक न था कि जन्नत गुनाहगारोंको भी मिलेगी॥

—जोश मलसियानी

चराग़े-सज्दा जलाके देखो, है बुतकदा दफ़्न ज़ेरे-काबा[5]।
हदूदे-इस्लाम ही के अन्दर यह सरहदे-काफ़िरी मिलेगी॥
हदूदे-दैरो-हरमसे हटकर झुका जबींने-नियाज़ अपनी।
ग़रज़से जब बेनियाज़ होगा, तो उजरते-बन्दगी मिलेगी॥
है जौरे-सैयादका ही सदक़ा चमनकी हंगामा आफ़रीनी।
तबाहियाँ जिस जगहपै होंगी वहीं कहीं ज़िन्दगी मिलेगी॥

—सिराज लखनवी

न ख़ौफ़े-तूफ़ाँ न शौक़े-साहिल ख़ुशामदें नाख़ुदा करें क्यों।
जो इन थपेड़ोंको सह गये हम तो ख़ुद नई ज़िन्दगी मिलेगी॥

—महवी लखनवी

---

[1]देखनेकी आज्ञा; [2]सनी हुई; [3]पथ-प्रदर्शकी; [4]डाकेज़नी; [5]जहाँ पहले मूर्तियाँ थीं, उन्हींको तोड़कर वहाँ काबा बना था, उसी ओर संकेत है।

जो राज़ आज़ादिए-वतनमें निहाँ था कौन उसको जानता था।
कि इक तरफ ख्वाजगी[1] मिलेगी तो इक तरफ बन्दगी[2] मिलेगी॥
यही है जमहूरियतके[3] मानी तो फिर ग़ुलामीका क्या गिला है।
किसीको ग़म होगा और किसीको मसर्रते-दायमी[4] मिलेगी॥
जो मुल्कमें इनक़लाब आया, तो क़त्लो-ग़ारतके साथ आया।
समझ रहे थे समझनेवाले, कि इक नई ज़िन्दगी मिलेगी॥

—सरीर काबरी मीनाई गयावी

किसे गुमाँ[5] था के ज़ुअमे-ख़ालिक की बावजूद[6] आदमे-हज़ींको।[7]
न इशरते-ख्वाजगी[8] मिलेगी, न लज़्ज़ते-बन्दगी मिलेगी॥
अभी कहाँ आदमीकी मंज़िल, अभी तो ख़ुद आदमी ही गुम है।
यह अहदे-हाज़िर तबाह हो ले, तो मंज़िले-आदमी मिलेगी॥
ख़िरदको[9] अपनी जुनूँ बनाकर जो ज़िन्दगीको ख़िराज[10] देगा।
यहाँ उसी साहबे-ख़िरदको जुनूँकी पैग़म्बरी मिलेगी॥
यह ना उम्मीदी यह बे यक़ीनी, यक़ीनो-उम्मीदकी झलक है।
इन्हीं अँधेरोंको पार करके यक़ीनकी रोशनी मिलेगी॥
हज़ार हो राख क़ल्बे-'साग़र' मगर इसी राखमें है जौहर।
तलाश जब अहले-दिल करेंगे, शररकी[11] दुनिया दबी मिलेगी॥

—सागर निज़ामी

सुना है दीवानगाने-उलफ़तको[12] दादे-आशुफ़्तगी[13] मिलेगी।
मगर यह सच है तो ज़ुल्फ़ेगेतीको[14] और कुछ बरहमी[15] मिलेगी॥

---

[1]पूज्यता (नेतागिरी); [2]गुलामी (सर झुकानेकी मजबूरी), [3]प्रजातन्त्रताके; [4]स्थायी सुख; [5]विश्वास, खयाल; [6]ईश्वरके भरोसेके होनेपर भी; [7]गमगीन आदमीको; [8]आदरका सुख, मालिकाना आनन्द; [9]अक्लको [10]कर, टैक्स, [11]चिनगारियोंकी; [12]प्रेमोन्मत्तोंको; [13]परेशानियोंकी दाद, प्रशंसा, [14]संसाररूपी प्रेयसीकी जुल्फोंको; [15]परेशानी।

ग़रूबे-ख़ुरशीदपर[1] रहेगा फ़रोगे-शबका[2] मदार[3] कबतक?
यह सोचता हूँ कि इन सितारोंको कब नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
वोह सुबहे-जन्नत कि जिसने ज़ाहिदको दीनो-दुनियासे खो दिया है।
कहीं मिलेगी तो मैकदेका तवाफ़[4] करती हुई मिलेगी॥
यही नशेमन तिरी निगाहोंको जिसने महदूद कर दिया है।
इसी नशेमनके आईनेमें क़फ़सकी तसवीर भी मिलेगी॥
कहाँ-कहाँ हमसफ़र रहे हम, वही है बेगानगीका आलम।
किसे ख़बर थी कि हर तमन्ना, ब-सूरते-अजनबी मिलेगी॥
ग़रज़-परस्तोंकी दोस्तीके फ़रेब सब खुल चुके हैं लेकिन।
'रविश' यह दुनिया क़दम-क़दमपर ख़ुलूसकी[5] मुद्दई मिलेगी॥

—रविश सद्दीकी

इस अंजुमनमें शरीक होनेसे पहले ही मैं यह जानता था।
नवाज़िशें दूसरोंकी क़िस्मत, मुझे फ़क़त बरहमी मिलेगी॥
अज़लके दिन जब बिनाए-हस्ती रखी थी, ऐलान कर दिया था।
सरोंको सौदा[6] नसीब होगा दिलोंको आशुफ़्तगी[7] मिलेगी॥
हुए थे जिस दिन असीर[8] हम सब चमनके आसार कह रहे थे।
तुम आओगे जब कफ़ससे छुटकर बहार जाती हुई मिलेगी॥

—माहिरउलक़ादिरी

क़दम बढ़ाओ खिज़ाँ नसीबो! वोह मंज़िलें मुन्तज़िर हैं अपनी।
जहाँ पहुँचकर निगाहो-दिलको, बहारकी ताज़गी मिलेगी॥
उस आदमे-नौकी आमद-आमद, है जिसके इदराककी[9] दमकसे।
समाजको बाँकापन मिलेगा, हयातको[10] दिलकशी मिलेगी॥

—नरेशकुमार शाद

---

[1]सूर्यास्तपर; [2]रात्रिके आनेका; [3]आसरा, भरोसा; [4]परिक्रमा; [5]निष्कपटताकी हामी; [6]दीवानगी; [7]परेशानी; [8]बन्दी; [9]अक़्लकी; [10]जीवनको।

नई लहर लाई थी सन्देशा, कि अब नई ज़िन्दगी मिलेगी।
किसे ख़बर थी हयाते-ताज़ा लहूमें लियड़ी हुई मिलेगी॥
उदास चेहरे, हज़ी-निगाहें, फ़सुर्दा दिल और सिसकती रूहें।
नये ज़मानेमें ऐ मुसाफ़िर! तुझे हर इक शै नई मिलेगी॥
नये-नये रहनुमा[1] फ़रेबे-खुद ऐतमादीमें[2] घिर गये हैं।
निगाहे-मंज़िल-शनास कहिए, जिसे वोह भटकी हुई मिलेगी॥
न उठा सका बार नस्ले-आदमसे ज़िन्दगीको नज़ाकतोंका।
किसी नये कद्र-आश्नाये-हयातको ज़िन्दगी मिलेगी॥
गुज़र सका तू अगर तुलू-ओ-ग़ुरूबे-हस्तीकी मंज़िलोंसे[3]।
तो फिर यही ज़िन्दगी तेरी ठोकरोंमें इक दिन पड़ी मिलेगी॥

—मंज़र सद्दीकी

थकी हुई सूरतोंसे जिस वक़्त मलगजी चादरें हटेंगी।
तो दश्ते-ग़ुरबतके काफ़िलोंमें भी रातभर चाँदनी मिलेगी॥
ख़बीस रूहें[4] अँधेरे जंगलमें, गर्म शोलोंसे खेलती हैं।
चला है बहका हुआ मुसाफ़िर कि उस तरफ़ रोशनी मिलेगी॥

—शफ़ीक जौनपुरी

रहे-वफ़ामें[5] फ़ना जो होगा, उसे नई ज़िन्दगी मिलेगी।
गुज़र मकामे-खुदीसे,[6] पहले हकीकते-बेखुदी[7] मिलेगी॥
यह चन्द लमहे जो मुग़्तनम[8] हैं तलाशे-साहिलमें[9] खो न इनको।
डुबोदे तूफ़ाने-ग़ममें कश्ती, यहीं कुछ आसूदगी[10] मिलेगी॥
मुझे डराता है बाग़वाँ क्यों तू बर्क़े-ख़ातिफ़की यूरिशोंसे[11]।
जलेगा जलने दे आशियाँको, चमनको तो रोशनी मिलेगी॥

—अलम मुज़फ़्फ़रनगरी

---

[1]नेता; [2]अहमन्यताके जालमें; [3]जीवनके उतार-चढ़ावकी मंज़िलोंसे; [4]अपवित्र आत्माएँ; [5]नेक मार्गमें; [6]अहम्भावसे; [7]आत्मलीनता; [8]ग़नीमत समझ; [9]किनारेकी खोजमें; [10]शान्ति-चैन; [11]बिजलीके भयानक हमलोंसे।

नहीं हूँ मायूस[1] जिन्दगीसे, मुझे यक़ीं है कि इक-न-इक दिन।
अलमके[2] तीरह उफ़क़पै[3] मुझको, शुआए-उम्मीद[4] भी मिलेगी॥

—जिया फ़तेहाबादी

यह बज़्मे-अहबाब[5] है यहाँ ऐ दिले-परीशाँ! ख़ुलूस कैसा?
यहाँ तो हर परदये-वफ़ामें छुपी हुई दुश्मनी मिलेगी॥
हो जिसकी अंजामपर[6] नज़र और उसपै भी मुसकरा रही हो।
रियाज़े-आलममें[7] तुझको ऐ दिल; कहीं न ऐसी कली मिलेगी॥

—जगन्नाथ आज़ाद

ग़मे जहाँ-ओ-ग़मेमुहब्बत, बहर प्याला जुदा है लेकिन।
मज़ाक़े-रिन्दीमें पुख़्तगी हो, तो कैफ़ियत एक-सी मिलेगी॥
'शमीम' आसाँ नहीं ख़ुशीको, ग़मे-ज़मानासे छीन लेना।
हज़ार दिल आँसुओंमें डूबेंगे तब कहीं इक हँसी मिलेगी॥

—शमीम करहानी

अगर न हो दिलमें सोज़[8] पिन्हाँ[9] नज़रको क्या रोशनी मिलेगी?
ज़मीन उगलेगी चाँद-सूरज मगर वही तीरगी[10] मिलेगी॥
ख़ुशी कहाँ है जहाने-ग़ममें? मिली तो इतनी ख़ुशी मिलेगी।
लबोंपै खेलेगी मुसकराहट नज़रमें अफ़सुर्दगी[11] मिलेगी॥
जो क़ैदो-बन्देचमनसे[12] घबराके आशियानेको छोड़ देगा।
करेगा जिस शाख़पर बसेरा वही लचकती हुई मिलेगी॥

—निसार इटावी

---

[1]निराश; [2]दु:खके; [3]अँधेरे आकाशपर; [4]आशा-किरण; [5]इष्ट-मित्रोंकी गोष्ठी; [6]परिणामपर; [7]संसारमें; [8]दर्द; [9]छुपा हुआ; [10]अँधेरी; [11]मुर्झायापन; [12]चमनकी बन्दिशरूपी क़ैदसे।

हमारी आँखोंमें हुस्न भरकर, वोह ख़ुद ही हमसे झिझक रहे हैं।
किसीकी रंगी अदाके सदके, किसीमें यह सादगी मिलेगी?

—वफ़ा बराही

क़फ़ससे छुटनेपै शाद थे हम कि लज़्ज़ते-ज़िन्दगी मिलेगी।
यह क्या ख़बर थी बहारे-गुलशन लहूमें डूबी हुई मिलेगी॥
वही जहालतकी बादशाही, वही जलालतकी कजकलाही[1]।
जो बा-ग़रज़ दोस्ती मिलेगी, तो बेसबब दुश्मनी मिलेगी॥
नई सहर[2] के हसीन सूरज, तुझे ग़रीबोंसे वास्ता क्या?
जहाँ उजाला है सीमो-ज़रका[3] वहीं तेरी रोशनी मिलेगी॥
वोह दिन भी थे जब अँधेरी रातोंमें भी क़दम राहे-रास्तपर थे।
और आज जब रोशनी मिली है तो ज़ीस्त भटकी हुई मिलेगी॥
जिन अहले-हिम्मतके रास्तोंमें बिछाये जाते हैं, आज काँटे।
उन्हींके ख़ूने-जिगरसे रंगीं चमनकी हर इक कली मिलेगी॥
वोह हम नहीं हैं कि सिर्फ़ अपने ही घरमें शमएँ जलाके बैठें।
वहाँ-वहाँ रोशनी करेंगे, जहाँ-जहाँ तीरगी[4] मिलेगी॥

—अब्दुल मजाहिद ज़ाहिद

वोह हुस्न हो या शबाब तेरा, वोह नाज़[5] हो या नियाज़[6] मेरा।
सिवाय उल्फ़तके इस जहाँमें हरेक शै आरज़ी[7] मिलेगी॥

—शफ़ीक कोटी

सितमतराज़ी-ए-दस्ते-गुलचीं,[8] तग़ाफ़ुले-बाग़बाँ[9] सरासर।
यही रविश है तो क्या चमनमें, शगुफ़्ता कोई कली मिलेगी॥

—तमन्ना बिजनौरी

---

[1]बाँकी तिर्छी टोपी; [2]सुबहके; [3]चाँदी, धनका; [4]अँधेरी; [5]अभिमान; [6]नम्रता; [7]अस्थायी; [8]फूल तोड़नेवालेका ज़ुल्म; [9]मालीकी उपेक्षा।

मक़ामे-जब्रो-करमसे[1] आगे, इक और मंज़िल भी है कि जिसमें।
न काहिशे-ग़मपै[2] बस चलेगा, न लज्ज़ते-सरख़ुशी[3] मिलेगी॥
—महज़ूँ नियाज़ी

बंधी हुई लौसे इस दियेकी जलेंगे कितने चराग़ देखो।
मेरे नशेमनकी आग ही से चमनको अब रोशनी मिलेगी॥
—बिस्मिल सिद्दीक़ी लखनवी

अजीब है गरदिशे-ज़माना, हक़ीक़तें बन गई फ़साना।
जिन्हें था दावाए-रहनुमाई, उन्हींमें अब गुमरही मिलेगी॥
'नसीम' इस दौरके सियासतज़दह ख़ुदाओंसे बचके रहना।
कि दिलपै इक हाथ बहरे-तसकीं[4] तो दूसरेमें छुरी मिलेगी॥
—नसीम रायपुरी

ग़मे-मुहब्बतका ज़िक्र ही क्या, ख़ुशीके लमहे न रास आये।
यह सब फ़रेबे-ख़याल ही था, कि तुमसे मिलकर ख़ुशी मिलेगी॥
—सैफ़ भुसावली

उठा सके आदमी तो पहले नज़रसे अपनी नक़ाब उठाये।
ज़माने भरकी तजल्लियोंने नक़ाब उलटी हुई मिलेगी॥
—नवाब झाँसवी

दयारे-ग़ुरबतके यह नशेबोफ़राज़ हिम्मत-शिकन हैं लेकिन।
यही वोह पगडंडियाँ हैं जिनसे कभी तो राहे-ख़ुशी मिलेगी॥
—रौनक दक्कनी

यह किसको मालूम था कि कल थी जो ज़िन्दगी-ज़िन्दगीकी ज़ामिन।
वोह ज़िन्दगी आज ज़िन्दगीका लहू बहाती हुई मिलेगी॥
—कोकब उलकादिरी

---

[1]कृपा-अत्याचारसे; [2]ग़मकी कमीपै; [3]शराबका आनन्द; [4]धैर्य बँधानेके लिए।

ख़ुदा-फ़रोशीके[1] हैं दुकानें, यह मदरसे और ख़ानकाहें[2]।
यक़ीनो-ईमाँकी क़ीमतोंपर यहाँ मताये-ख़ुदी[3] मिलेगी॥
ग़रज़के बन्दों, ज़रूरतोंके पुजारियोंका है यह ज़माना।
क़दम-क़दमपर यहाँ नज़रको ख़ुलूसे-दिलकी[4] कमी मिलेगी॥

—अनवर साबरी

जमील[5] ज़ौक़े-फ़ना[6] अगर है तो जाँ-फ़िज़ाँ मौत भी मिलेगी।
तुझे मुबारक हो मरनेवाले कि इक नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
है मुनहसिर[7] शौक़े-जुस्तजूपर सुबकरवी[8] हो कि तेज़गामी।
हरेक मुसाफ़िरको अपनी मंज़िल क़रीब भी दूर भी मिलेगी॥
है शर्त सज्देसे बेनियाज़ी[9] वगर्ना मालूम सरफ़राज़ी।
जबींसे धोले जो हाथ उसको इजाज़ते-बन्दगी मिलेगी॥
हिसाब उसका है कुछ अनोखा शुमार उसका है कुछ निराला।
वहीं जफ़ा कामयाब होगी, जहाँ वफ़ाकी कमी मिलेगी॥

—विश्वेश्वरप्रसाद मुनव्वर लखनवी

मज़ाक़े-उलफ़त लतीफ़ होगा तो दिलकशा होगी शामेग़म भी।
अँधेरे उगलेंगे चाँद-तारे, हरइक तरफ़ चाँदनी मिलेगी॥
अदब-नवाज़ाने-दहर[10] 'तुर्फ़ा' करें अदीबोंपर भी नवाज़िश[11]।
अदीब ज़िन्दा अगर रहेंगे, अदबको भी ज़िन्दगी मिलेगी॥

—तुर्फ़ा क़ुरैशी

✓ तुम्हींने ग़मसे मुझे नवाज़ा, तुम्हींसे मुझको ख़ुशी मिलेगी।
जबींको जिस दरने दाग़ बख़्शा उसीसे ताबिन्दगी[12] मिलेगी॥

---

[1]ईश्वर-विक्रीकी; [2]मस्जिद, दरगाहें; [3]अहमन्यताकी दौलत; [4]निष्कपट हृदयकी; [5]हसीन; [6]मृत्युका चाव; [7]दार-मदार; [8]मन्द चाल; [9]निष्काम उपासना; [10]साहित्य-प्रेमी श्रीमत, [11]साहित्यिकोंका सम्मान करें, [12]रोशनी।

इसी भरोसेपै कट रही है बुरी-भली ज़िन्दगी अभी तक।
जहाँसे बेदाद हो रही है, वहींसे फिर दाद भी मिलेगी॥
—नज़र सहवार

अँधेरी रातोंमें रोनेवालोंसे कह रही है शफ़क़की सुर्ख़ी[1]।
न अब वहाओ कोई भी आँसू तुम्हे नई रोशनी मिलेगी॥
कोई मजाहिद[2] तो होगा पैदा, जो ख़ूँसे सींचेगा अपना गुलशन।
उसीके ख़ूँसे ख़िज़ाँ रसीदा चमनको फिर ज़िन्दगी मिलेगी॥
—जमनादास अख़्त

उजड़के आये हैं जो वतनसे उन्हें ज़रा इक नज़र तो देखो।
अभीतक उन अहले-ग़मकी आँखोंमें आँसुओंकी नमी मिलेगी॥
—रामकृष्ण मुज़त

अमल हरइक नेको-बद तुम्हारा, सदा-ए-गुम्बद है याद रक्खो।
करोगे नेकी मिलेगी नेकी, बदी करोगे बदी मिलेगी॥
इसी भरोसेपै गामज़न[3] हूँ, तेरी मुहब्बतके रास्तेपर।
कहीं तो तेरा निशाँ मिलेगा, कभी तो तेरी गली मिलेगी॥
हज़ार नाकामियाँ हों 'नश्तर' हज़ार गुमराहियाँ हो लेकिन।
तलाशे-मंज़िल अगर है दिलसे तो एक दिन लाज़िमी मिलेगी॥
—हरगोविन्दसिंह नश्तर हतगाम

यही दरिन्दे उठेंगे इक रोज़ सारे आलमकी रहबरीको?
"इन्हीं अँधेरोंसे बज़्मेगेतीको एक दिन रोशनी मिलेगी"॥
मशहूद मुफ़

इन आस्तानोंपै मत झुको तुम, यह शाही ईवाँ[4] है शाने-नख़वत[5]।
ख़ुलूसो-उल्फ़तके[6] बदले तुमको, यहाँ फ़क़त बरहमी[7] मिलेगी॥
—साज़ बिलगराम

---

[1]सन्ध्याकालीन सूर्यलालिमा; [2]धर्मपर मरनेवाला; [3]चल रहा हूँ

जबीने-इफलास[1] खम[2] न होगी, अब अहले दौलतके आस्ताँपर[3]।
नया मज़ाक़े-सजूद[4] होगा, नई रहे-बन्दगी मिलेगी॥

—ज़फ़र आज़मी

जिसे न काबेसे वास्ता हो, न जिसको मतलब हो बुतकदेसे।
मेरी जबीने-नियाज़में[5] ऐसी रफ़अ़ते-बन्दगी[6] मिलेगी॥
न देखो नक़्शो-निगारे-हस्ती[7] कि आदमीयत यहाँ है सस्ती।
उरूजे-इन्सानियत कहाँ अब तो पस्ती-ए-आदमी मिलेगी॥

—प्रेम देहलवी

वोह आग जिसको बुझा दिया था, तुम्हारी बेइल्तफातियोंने[8]।
वोह आग अबतक बुझी नहीं है, वोह आग दिलमें दबी मिलेगी॥
गमे-जहाँसे फ़राग़[9] मिलता, तो हम खुदासे यह पूछ लेते।
जहाँके मालिक तेरे जहाँमें कभी हमें भी खुशी मिलेगी॥

—नैयर सीमाबी

---

[1]दरिद्रताका मस्तक; [2]नहीं झुकेगी; [3]धनवानोंके दरपर; [4]उपास्य नया होगा, [5]नम्र मस्तकमें; [6]उपासनाकी शक्ति; [7]जीवनसुखके चिह्न, [8]अकृपाओंने; [9]अवकाश, फुरसत।

पुराने वक़्तोमे जव कि विजली नही थी, मुशाअ़रोंमें शुअ़रा ऊँची

मौजूदा मुशाअ़रे

मसनदपर श्रोताओंकी तरफ मुँह करके अर्द्ध चन्द्राकार अपने-अपने मर्त्तवेके हिसावसे वैठते थे और शमअ़ सामने रखी जानेपर अपनी गज़ल पढते थे ।[१]

वर्तमान युगमें ढग वदल गया है। अव मुशाअरोकी व्यवस्था आवुनिक व्याख्यान-सभाओ-जैसी होती है। श्रोता मंचके सामने और शाइर मचपर वैठते है; और मीर मुशाअ़रेके आदेशपर माइकपर जाकर अपना-अपना कलाम सुनाते है।

कभी यह मुशाअ़रे तरही (समस्यापूर्ति) कभी गैर तरही, कभी सिर्फ गज़लोके, कभी सिर्फ नज़्मोंके और अक्सर मिले-जुले होते है। गैर तरही मुशाअ़रोकी नीव इसलिए डाली गई थी कि शाइरका वेहतर-से-वेहतर कलाम सुना जा सके। तरही मुशाअ़रोमें एक खामी तो यह थी कि वाज़ दफा फुरसत न मिलनेकी वजहसे अच्छे शाइर मिसरा तरहपर गज़ल नही कह सकनेकी वजहसे मुशाअ़रोंमें शिरकत नही फ़र्माते थे; और उनकी गैर मौजूदगी वहुत अखरती थी। दूसरी खामी यह थी कि शाइर मिसरेपर गिरह लगानेमे पूरी शक्ति लगा देते थे और प्राय. मिलती-जुलती एक-सी ग़ज़लोको सुनते-सुनते लोग ऊव जाते थे।

गैर तरही मुशाअरोंके रिवाजसे जहाँ यह लाभ हुआ कि हर शाइरसे जुदा-जुदा रंगका कलाम सुननेको मिलता है, वहाँ यह नुकसान भी पहुँचा कि अक्सर शाइर पचासो दफाका मुशाइरोंमे सुनाया हुआ, और कई-कई पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित कलाम पढ़ते रहते है।

---

[१]इस तरहके कई मुशाअ़रे १९२१-२२ ई० मे दिल्लीके हिन्दुरावके वाड़ेमे देखनेका मुझे भी इत्तफाक हुआ है।

भारत और पाकिस्तानके भिन्न-भिन्न रेडियो-स्टेशनोंसे भी मुशाअ़रे मासिक-पाक्षिक ध्वनित होते रहते हैं। कभी यह अपनी ओरसे मुशाअ़रोका आयोजन करते हैं और कभी पब्लिक मुशाअ़रोको प्रसारित करते रहते हैं।

इन मुशाअ़रोंसे यह फायदा पहुँचा कि घंटे-डेढ-घटेके अर्सेमें ही अच्छे-अच्छे शाइरोका कलाम घर बैठे हुए आरामसे सुननेको मिल जाता है और परिवारके सभी सदस्य लुत्फ़अन्दोज़ हो सकते हैं।

हज़रत 'सरवर' तोसवी साहबने एक नया कमाल और ईजाद किया है कि वे बड़े-बड़े मुशाअ़रोंकी रनिंग कमेंट्री अपने 'शाने-हिन्द' अख़बारमें प्रकाशित करते रहते हैं। समूचे मुशाअ़रेका हू-ब-हू ऐसा ख़ाका पेश करते हैं कि वह चलचित्रके समान नज़रोंके सामने नाचने लगता है और पढते हुए ऐसा मालूम होता है कि हम स्वय मुशाअ़रेमे अच्छी-से-अच्छी जगह बैठे हुए यह सब देख रहे हैं।

यूं तो आप स्वतन्त्रता, गालिब, हाली, इकबाल, चकवस्त, बर्क आदि दिवसोपर हुए वृहत् मुशाअ़रो और भारत-पाकिस्तानके मिले-जुले मुशाअ़रोकी न जाने कितनी कमेण्ट्री प्रकाशित कर चुके हैं। हम सिर्फ यहाँ एक मुशाअ़रेका तनिक-सा अश बतौर बानगी दे रहे हैं। यह मुशाअ़रा पटनेमें बिहार-रियासती-उर्दू-कान्फ्रेंसके तत्वावधानमें १४ मई १९५१ को हुआ था। जिसे पटनेके रेडियो स्टेशनने भी रात्रिके ९॥ बजेसे ११ बजेतक प्रसारित किया था। हमने भी यह मुशाअ़रा रेडियोपर सुना था। उसी मुशाअ़रेकी हज़रत 'सरवर' तोसवी द्वारा की गई कमेण्ट्रीकी एक झाँकी देखिए—

"अब ऐलान हो रहा है कि जनाब जगन्नाथ 'आज़ाद' अपना कलाम पेश करेंगे। लीजिए 'आज़ाद' साहब अपना पेटेण्ट लिबास पहिने माइक पर तशरीफ ले आये हैं, और दो-तीन क़ताआ़त सुनानेके बाद आपने मज-

मूअये कलाम 'सितारोसे जर्रोतक' में-से मतबूआ गजल पढ़नी शुरू की है। मतला फर्माते हैं—

सुहब्बतमें उन्हें अहले-नजर[1] कामिल समझते हैं।
जो इस तूफानकी हर मौजको साहिल समझते हैं॥

आज़ाद साहब बहुत अच्छा पढ़ते है, इसलिए दाद लेनेमे उन्हे बहुत आसानी रहती है। शेर फर्मा रहे हैं—

कभी वोह दिन थे अपने दिलको हम अपना न कहते थे।
मगर अब हर बशरके[2] दिलको अपना दिल समझते हैं॥
वोह फ़न[3] जो ताब ला सकता न हो दर्दे-जमानेकी[4]।
हम ऐसे फ़नको इक अफ़सानये-बातिल[5] समझते है॥
वही इन्सान साहिलपर[6], जिन्हें तूफ़ाँका धोका हो।
अगर अड़ जायें तूफ़ानोंको भी साहिल समझते हैं॥

इस शेरपर 'आज़ाद' साहबको अच्छी दाद दी गई है और आप फ़र्मा रहे हैं—

हमींने ऐ मुहब्बत क़द्र पहचानी है कुछ तेरी।
तुझे तूफ़ाँ, तुझे किश्ती, तुझे साहिल समझते हैं॥

'आज़ाद' साहब काफ़ी दाद पानेके बाद अपनी जगह पर तशरीफ़ ले आये है। अब हजरत रविश सद्दीकी अपने खास अन्दाजसे मुसकराते हुए माइकके सामने तशरीफ़ ले आये हे, और फर्मा रहे है 'नज्मका उनुवान (शीर्षक) है 'यादश बखैर', इरशाद हुआ है—

शामे-गुरबत[7] ही में सुबहे-वतन[8] भूल गये।
हम तो हर ख्वाबको[9] ऐ चर्खे-कुहन[10] भूल गये॥

---

[1]पारखी; [2]मनुष्यके; [3]कला, ज्ञान; [4]दुनियाके दुःखको; [5]कहानी मात्र; [6]किनारेपर; [7]यात्राकी सन्ध्या होते ही; [8]अपने देशका सुहावना प्रातःकाल; [9]स्वप्नको; [10]आस्मान।

नख़वते-शेख़ो-विरहमन[1] तो बजा[2] है लेकिन—
क्या हुआ, क्यों हमें, इसनामे-वतन[3] भूल गये॥

दादका एक रेला है कि थमनेमे नही आ रहा है। चुनांचे 'रविश' साहबसे यह शेर तीन-चार मर्त्तबा पढवाया गया है। इसके बाद इरशाद होता है—

ज़िन्दगी दश्त-नशीनीमें[4] गुज़ारी जिसने।
उसी वहशीको[5] गज़ालाने-ख़तन[6] भूल गये॥
मशरवे-इश्कके[7] आदाब[8] सिखाये जिसने।
उसी मैख़्वारको[9] रिन्दाने-कुहन[10] भूल गये॥

रविश साहबको बहुत ज्यादा दाद दी जा रही है और रविश साहब निहायत अच्छे अन्दाज़में फर्मा रहे हैं—

ख़ारको[11] जिसने दिया शोल-ए-बरहमका[12] जलाल।
ख़ुद फ़रामोश[13] वोह एजाज़े-सुख़न[14] भूल गये॥
नामुकम्मिल ही रही बरबादे-वतनकी रूदाद[15]।
आज सब तज़्करए-दारो-रसन[16] भूल गये॥

रविश साहबको निहायत अच्छी दाद दी जा रही है और हक भी यह है कि उनकी नज़्म काबिले-तारीफ है। फर्माते हैं—

दर्द था किस्सये-शब हाये-ग़ुलामी[17] जिनको।
वही ख़ुरशीदको[18] पहली किरन ही भूल गये॥
क्या यह सब रंजो-मुहन[19] परदये-ग़फ़लत[20] है 'रविश'!
हम तो इस सोचमें सब रंजो-मुहन भूल गये॥

---

[1]शेख-ब्राह्मणका द्वेष; [2]उचित; [3]वतनके प्रेमी; [4]घुमक्कडपनमें; [5]दीवानेको; [6]जंगली हिरन; [7]प्रेमके; [8]ढंग; [9]मद्यपको; [10]पुराने शराबी; [11]काँटेको; [12]भड़क उठनेवाली चिनगारीका आबा; [13]भूले हुए, [14]वाणीके जादूगरको; [15]कहानी; [16]सूली, फाँसीके वर्णन; [17]पराधीनता रूपी अँधियारीका दुःख; [18]सूर्यको; [19]दुःख, गम; [20]भूल, उपेक्षाके पर्दे।

जनाब 'रविश' साहब निहायत अच्छी दाद पानेके बाद अपनी जगहपर तशरीफ ले आये हैं और अब हज़रत बालमुकुन्द 'अर्श' मलसियानी माइक पर तशरीफ ले आये हैं। मतला फर्माया है—

यह दौरे-ख़िरद[1] है, दौरे-जुनूँ,[2] इस दौरमें जीना मुश्किल है।
अंगूरकी मै के[3] धोकेमें ज़हर-आबका[4] पीना मुश्किल है॥

अर्श साहबको मतलेसे ही दाद मिलना शुरू हो गई है और आप फर्मा रहे हैं—

जब नाख़ुने-वहशत[5] चलते थे, रोकेसे किसीके रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानीयत,[6] सीते हैं तो सीना मुश्किल है॥

बस कुछ न पूछिए दादका एक रेला है कि थमनेमे नही आ रहा है। दादका शोर कुछ कम हुआ तो 'अर्श' साहबने यह शेर दुबारा पढनेके बाद इरशाद फर्माया—

जो घरमपै बीती देख चुके, ईमाँपै जो गुज़री देख चुके।
इस रामो-रहीमकी दुनियामें इन्सानका जीना मुश्किल है॥

दाद उसी अन्दाज़से दी जा रही है और जनाब अर्श फर्मा रहे हैं—

इक सब्रके घूंटसे मिट जाती सब तिश्नालबोंकी[7] तिश्नालबी[8]।
कम-ज़र्फ़ी-ए-दुनियाके[9] सदके[10] यह घूंट भी पीना मुश्किल है॥

वह शोला[11] नहीं, जो बुझ जाये, आँधीके एक ही झोंकेसे।
बुझनेका सलीक़ा आसाँ है, जलनेका तरीका मुश्किल है॥

'अर्श' साहब मुशाअ़रेपर छा गये हैं और दाद है कि झोलियाँ भर-भर कर दी जा रही हैं। सुनिए अर्श साहब क्या फर्मा रहे हैं—

---

[1]अक़्लका ज़माना; [2]ऐ उन्मादके युग; [3]अंगूरी शराबके; [4]ज़हरीला पानी [5]दीवानगीके नख; [6]मानव-हृदयकी विदीर्णता; [7]प्यासोंकी; [8]प्यास; [9]नीच दुनियावालोंकी; [10]कुर्बान; [11]चिनगारी।

करनेको रफ़ू कर ही लेंगे, दुनियावाले सब ज़ख़्म अपने।
जो ज़ख़्म-दिले-इन्साँ पै लगा, उस ज़ख़्मका सीना मुश्किल है॥

इस शेरपर वहुत ज्यादा दाद दी गई है, और सुनिए अर्श साहव किस कदर वेहतरीन शेर फर्मा रहे हैं—

वोह मर्द नहीं जो डर जाये, माहोलके[1] ख़ूनी मंज़रसे[2]।
उस हालमें जीना लाज़िम है, जिस हालमें जीना मुश्किल है॥

इस शेरने तो एक कयामत वरपा कर दी है, और दाद है कि अपनी इन्तहाको पहुँच गई है। कई वार यह शेर 'अर्श' साहवसे पढ़वाया जा रहा है, और हरवार दादमे इज़ाफ़ा हो रहा है। काफी देरके वाद जव दादका रेला कुछ थमा तो अर्श साहव मक्ता फर्मा रहे हैं—

मिलनेको मिलेगा विलआख़िर[3] ऐ 'अर्श' सकूने-साहिल[4] भी।
तूफ़ाने-हवादससे[5] लेकिन वच जाये सफ़ीना[6] मुश्किल है॥

'अर्श साहवकी यह ग़ज़ल विला खौफोतरदीद हासिले-मुशाअ्ररा रही और जिस क़दर दाद 'अर्श' साहवको मिली, इस मुशाअरेमे किसीको नसीव न हुई।

लीजिए 'अनवर' साहव झूमते हुए माइककी तरफ जा रहे हैं। सुनिए मतला फ़र्मा रहे हैं—

अव भी यह तआल्लुक[7] वाकी है, अव भी यह करम[8] फर्माते हैं।
जव कोई खवर सुन लेते हैं, पुरसिशके[9] लिए आ जाते हैं॥

अनवर सावरी और दाद तो अव लाज़िम-ओ-मलजूम होकर रह गये हैं। लिहाज़ा खूव दाद मिल रही है—

---

[1]वातावरणके; [2]दृश्यसे; [3]अवश्य; [4]दरिया किनारेकी शान्ति; [5]तूफ़ानोंसे, [6]नाव, [7]सम्वन्ध; [8]कृपा; [9]हाल पूछने।

वोह आख़िरे-शव चुपके-चुपके, जब याद मुझे फ़र्माते हैं।
शबनमको[1] धड़कती है छाती, तारोंको पसीने आते हैं॥
जब उनको ज़रूरत होती है, कुछ बात मुझे समझानेकी।
बेरब्त-से[2] मुबहम[3] अफ़साने[4], औरोंको सुनाये जाते हैं॥

अनवर साबरी साहबको दाद मिल रही है और 'अख़्तर' और 'ने (संचालक मुशाअरा) उनका पाँव दवा रहे हैं, जिसका मतलब यह है अनवर साहब और न पढे, क्योंकि ११ बजनेमे वक़्त बहुत कम रह ग है और 'अख़्तर' साहबके प्रोग्रामके मुताबिक अभी कुछ और शुअ़रा पढ़ना है। 'अनवर' साहबने अपना भारी भरकम पाँव 'अख़्तर' साह पाँवपर रख दिया है। जिसका मतलब है कि घबराइए नहीं, अभी ख़ किये देता हूँ। चुनाचे 'अनवर' साहब आख़िरी शेर पढ़ रहे हैं—

मजबूर तमाशा होते हैं, जब ज़ेरे-नक़ाब उनके जल्वे।
दुनियाकी नज़रसे बचनेको वोह मेरी नज़र बन जाते हैं॥

'सरवर' साहबकी की हुई कमेण्ट्रीकी हमने तनिक-सी झलक दिख है। वरना ख़ास-ख़ास आदमी कहाँ बैठे हैं, किस लिवासमें आये चुपके-चुपके क्या बातें होती हैं, कौन किसपर फ़ब्तियाँ कस रहा है मुशाअ़रोके सयोजकोंपर क्या हाशियाराई हो रही है, वग़ैरह-वग़ैरह स कुछ जो आँखोसे देखते और कानोंसे सुनते हैं, बहुत ख़ूबीसे बयान करते है

१७ फ़रवरी १९५४ ई०]

7095

---

[1] ओसकी; [2] असम्बन्धित; [3] व्यर्थ; [4] क़िस्से।